प्राप्ति-स्थान
अभिमन्यु भुवालका
टोश हाउस
पी० ३२/२२, इंडिया एक्सचेंज प्लेस
कलकत्ता-७ ०००१

चिन्तनिका

लेखक :

रामकुमार भुवालका

:

२०६४

अनुक्रम :

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
भूमिका	यशपाल जैन	क
१	संकटपूर्ण स्थिति व विवेक का मार्ग	१
२	गांधीजी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त	४
३	हवा में भांग समा गई है	७
४	देश की सोचनीय आर्थिक दशा	११
५	दान किसको दें ?	१४
६	स्वास्थ्य ही जीवन है	१९
७	मृत्यु का रहस्य	२२
८	औलिया (साधु) तथा लोहार की कथा	२६
९	लोकसत्ता के शाश्वत आधार	२९
१०	ऐसी ही शिक्षा व शिक्षा-प्रणाली	३३
११	सन्त चरवाहा	३८
१२	हंस के रूप में ब्रह्म	४५
१३	मानसिक प्रवृत्तियां और हमारा स्वास्थ्य	४९
१४	प्रकृति से स्वास्थ्य का सम्बन्ध	५५
१५	काश कोई भगवान नृसिंह हो	५८
१६	क्षमा, सत्य एवं धैर्य की लोकातीत महत्ता	६२
१७	शिष्टाचार की कसौटी पर राजनीति	६६
१८	अमरता का सोपान	७०
१९	देश किधर जा रहा है ?	७५
२०	दृढ़ संकल्प से ईश्वर की प्राप्ति	७९
२१	सावधान नशीली हवा बह रही है	८३
२२	आनन्द लोक का सोपान	८७
२३	कामना की वासना	९३
२४	चन्दे की परिभाषा	९७
२५	लेन-देन दिखावा पर रोक जरूरी	१०२
२६	भ्रष्टाचार का उन्मूलन कैसे हो ?	१०५
२७	राज्याधिकारी का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य	१०८
२८	स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा	११२
२९	सत्य और ईमानदारी का सर्वदा महत्व	११९
३०	मियां भाई की श्रद्धा	१२२
३१	प्रेम स्वरूप भक्ति में सुख-अमरता	१२५
३२	भक्ति से सुख की प्राप्ति	१२९
३३	मित्र-अमित्रों की पहचान	१३३

भूमिका

सामान्यतया अधिकांश व्यक्ति एक ही लीक पर चलने के अभ्यस्त होते हैं। उनका जीवन उसी लीक पर चलते-चलते समाप्त हो जाता है। लेकिन कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं, जिन्हें एक ही लीक पर चलने में सन्तोष नहीं होता है। उनकी प्रतिभा नये-नये मार्ग खोजती है और उन पर चलने में एक नई स्फूर्ति और नये आनन्द का अनुभव करती है। रूस के विख्यात लेखक तथा चिन्तक टाल्स्टाय ने ठीक ही कहा है कि कुछ लोगों के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू होते हैं, जो उस व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के लिए नई-नई दिशायें खोजते और खोलते रहते हैं। यही कारण है कि उनकी चमक एक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहती। अनेक क्षेत्रों में प्रकाश देती है।

स्व० रामकुमार भुवालका ऐसे ही व्यक्तित्व वाले थे। वैसे मुख्यतः वह व्यवसाय के क्षेत्र में रहे, लेकिन उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं ने उन्हें किसी संकीर्ण दायरे में बँधने नहीं दिया। वस्तुतः वह धुन के व्यक्ति थे। जिस चीज के पीछे पड़ते थे, उसे बीच में नहीं छोड़ते थे। धन कमाने में लगे तो ऐसे लगे कि धनिकों की पंक्ति में अपना ऊँचा स्थान बनाकर ही चैन लिया। समाज-सुधार के कार्य में जुटे तो पुरातन-पंथियों के विरोध की चिन्ता न करके वहुत-सी सड़ी-गली कुरीतियों को तोड़ डाला, अन्ध-विश्वासों को मिटा दिया। निर्धन, दीन-दलितों के उद्धार-कार्यों को हाथ में लिया तो वहुत-सी संस्थाओं को जी खोल कर सहायता दी और दिलवाई। अनेक जन-सेवी संस्थाओं को भरपूर प्रोत्साहन दिया, स्वयं 'भुवालका जन कल्याण ट्रस्ट" की स्थापना की और कुछ ही दिनों में उसे कहीं-से-कहीं पहुँचा दिया। राजनीति की ओर झुकाव हुआ तो कांग्रस के सक्रिय कार्यकर्ता बने, अनन्तर पश्चिमी बंगाल की विधान-सभा और फिर संसद (राज्य सभा) के सदस्य निर्वाचित हुए।

रामकुमारजी का ध्यान पुस्तकों के पठन-पाठन की ओर गया। आगे चलकर तो उनका विद्या-व्यसन इतना वढ़ा कि वह अपनी दैनिक चर्या में स्वाध्याय को विशेष महत्व देने लगे। पुस्तकों को वह बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से पढ़ते थे और उनके महत्वपूर्ण अंशों को रेखांकित कर देते थे। बाद में उन अंशों को अपने मिलने वालों को वड़ी गम्भीरता से सुनाते थे। उनकी वृत्ति

यह भी रहती थी कि जो पुस्तक उन्हें पसन्द आती थी, उसे अधिक-से-अधिक पाठक पढ़ें। इसके लिये वे उन पुस्तकों की कुछ प्रतियाँ मँगा लेते थे और उन्हें मूलभाव से अपने संगी-साथियों को भेंट में देते थे। उनकी दी हुई कई पुस्तकें हमारे पास हैं।

इस विद्या-व्यसन ने उनकी चिन्तनशीलता को भरपूर बढ़ावा दिया। समाज के एक जागरूक नागरिक होने के कारण उनका ध्यान वर्तमान काल के ज्वलन्त प्रश्नों की ओर गया और उन्होंने अनुभव किया कि अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिये उन्हें लेखनी का सहारा लेना चाहिये। जिस समय वह राज्य सभा के सदस्य थे, उनका निकट सम्पर्क देश के प्रमुख हिन्दी-लेखकों से हुआ। उसने उनकी लेखन-प्रवृत्ति को और भी स्फुरित किया।

परिणाम यह हुआ कि उनकी लेखनी अवाध गति से चल पड़ी। वह लेख लिखते थे और अपनी बात को अधिक बोधगम्य बनाने के लिए कभी-कभी कहानियाँ भी लिखते थे। लेखन उनका मिशन था। अत: अपनी प्रत्येक रचना की कई-कई प्रतियाँ टाईप कराते और उन्हें विभिन्न पत्रों को भेज देते। 'सस्ता साहित्य मण्डल' से प्रकाशित मासिक 'जीवन साहित्य' के प्रति उनका अगाध स्नेह था। अपनी बहुत-सी रचनायें उसमें प्रकाशनार्थ भेजते थे।

अध्यात्म, नैतिकता, संस्कृति, नागरिक दायित्व, स्वास्थ्य, राजनीति, जन-सेवा आदि कोई भी विषय उनके लिए वर्जित नहीं था। जब जो जी में आया, उसी पर उन्होंने अपने विचार निर्भीकता से लिख डाले।

उनके दो संग्रह प्रकाशित हुए। पाठकों के सभी वर्गों ने उनकी सराहना की। उन पुस्तकों को उन्होंने अधिक-से-अधिक पाठकों तक पहुंचाने का प्रयत्न किया। उनके विचारों तथा उनकी भाषा-शैली से बुद्धिजीवी वर्ग भी प्रभावित हुआ।

अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में उन्होंने स्वाध्याय और लेखन को प्राथमिकता दी। दफ्तर में हों या घर, वह पुस्तकों से घिरे रहते। उनकी मेज पर पुस्तकों का ढेर लगा रहता। हम जब भी कलकत्ता जाते, कुछ समय उनके साथ अवश्य बिताते। किसी भी पुस्तक को उठाकर देखते तो उसे रंगा हुआ पाते।

दो पुस्तकें प्रकाशित होने के बाद उन्होंने जो लेख लिखे, उनका संकलन प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। यदि वह इस संग्रह को प्रकाशित पुस्तक के रूप में देख पाते तो निश्चय ही उन्हें बड़ा सन्तोष होता। पर प्रभु की लीला अपरम्पार है।

इस पुस्तक में २१ रचनाएँ हैं। इनकी दो विशेषताएँ मुख्य रूप से सामने आती हैं। पहली तो यह कि उन्होंने जो भी विषय अपनी रचना के लिए चुना है, उसके साथ पूरा न्याय किया है। चन्दे की परिभाषा हो या दान की महिमा, शिक्षा और परीक्षा-प्रणाली हो या स्वास्थ्य, क्षमा, सत्य और धैर्य हो अथवा दुःखों का गरलपान, वह विषय की गहराई में जाते थे। सामयिक प्रश्नों पर भी वह बड़ी संजीदगी से विचार करते थे और बहुत ही सुलझे हुए विचार पाठकों को देते थे।

दूसरी बात यह कि उनके चिन्तन का पटल अत्यन्त व्यापक था। इससे लेखन में वह किसी एक विषय से नहीं बँधे। रचनाओं में विविधता खूब रक्खी। वस्तुतः सामयिक समस्याओं तथा विषयों में उनकी रूचि बहुत थी। यही कारण है कि सनातन मूल्यों की चर्चा करते हुए भी वह वर्तमान युग के प्रश्नों को नहीं भूले। इस दृष्टि से आज के सन्दर्भों में इस पुस्तक की उपादेयता असन्दिग्ध है। जो समस्याएँ उनके सामने थीं, वे अब भी यथापूर्व बनी हैं। अतः उनका चिन्तन और विश्लेषण पाठकों के लिए विशेष रोचक और रुचिकर है।

पूरी पुस्तक सुभाषित से भरी पड़ी है। नमूने के रूप में कुछ सुभाषित देखिये :—

"दिव्य गुणों से युक्त व्यक्तियों को देव कहते हैं।"

'मनुष्य जब अपना वास्तविक स्वरूप भूल जाता है तो उसके समस्त मानवीय गुण भी समाप्त हो जाते हैं।"

"राजा के सद्गुणों के प्रभाव से प्रजा-मण्डल पर मंगल की सुधा बरसती है और उसके दुर्गुणों से अमंगल का वज्रपात होता है।"

"मन की दवा शिक्षा और तन की दवा स्वास्थ्य आज भ्रष्टाचार की ज्वाला में भुन गये हैं।"

"आदमी जब मन में कोई चीज ठान लेता है तो उसे करने में बाधा उपस्थित नहीं होती। इसके लिये ईश्वरीय शक्ति उसे मिलती रहती है।"

"अगर मन को संतुलित रक्खा जाय, धीरज से काम लिया जाय और प्रकृति के अनुशासन में रहा जाय तो सुख सुविधा, शान्ति और पूर्ण उन्नति की राह सहज मिल जाय।"

"मनुष्य कमजोर होने पर ही दूसरों का शिकार बनता है। स्वार्थी दुनिया जैसे चाहती है. उसे नचाती है। वह दुःख भोगता है, रोता है, किन्तु अपने निस्तार के लिए न साहस पाता है, न उपाय।"

"जिस प्रकार गंगा, यमुना और सरस्वती के पावन संगम पर परम महिमामय तीर्थराज प्रतिष्ठित हैं, उसी भाँति क्षमा, सत्य और धैर्य की त्रिवेणी पर ही मानवता की प्रतिष्ठा हुई है।"

"मनुष्य भगवत-तत्व को प्राप्त करके लोक-वन्दना का अधिकारी बन जाता है। इसके विपरीत आचरण करने वाला मानवीय पद से पतित होकर दानव की संज्ञा प्राप्त करता है। देवत्व और दानवत्व का यही रहस्य है।"

"पहाड़ पर फिसलना और गिरना, उसकी चोटी पर चढ़ने से कहीं आसान है।"

"राज चाहे राजा का हो या किसी दल का, जो जनता के अन्तरतम में अपने लोक-कल्याणकारी कार्यों द्वारा अपना राज्य बना सका, सच्चा जन-नेता कहलाने का अधिकार वही पा सका।"

ऐसे उदात्त विचार सारी पुस्तक में यत्र-तत्र नगीने की तरह जड़े हुए हैं। वे पाठक को सोचने के लिये विवश करते हैं और उन्हें चिन्तन की गहराई में ले जाने में सहायक होते हैं।

पुस्तक की सभी रचनायें सुपाठ्य हैं। उपयोगी हैं। इनका सृजन उस काल में हुआ है, जबकि लेखक के मस्तिष्क में आवेश का स्थान संयम ने ले लिया था और वह तटस्थ भाव से समस्याओं का विश्लेषण कर सकते थे।

हमने प्रत्येक रचना पर पृथक-पृथक विचार नहीं किया है। हम चाहते हैं कि पाठक पूरी पुस्तक को अपनी दृष्टि से पढ़े और उसकी रचनाओं का आनन्द लें।

लेखक अब हमारे बीच नहीं हैं। पुस्तक का प्रकाशन उनकी प्रथम पुण्य-तिथि पर हो रहा है। एक प्रकार से यह प्रकाशन दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप है। इससे पुस्तक का महत्व और उसकी गम्भीरता और भी बढ़ जाती है। सच यह है कि इससे बढ़कर और किसी श्राद्ध की कल्पना नहीं की जा सकती थी। निश्चय ही भुवालका-परिवार ने यह एक अत्यन्त दूरदर्शितापूर्ण सत्कार्य किया है, जिसके लिए वे हम सबके अभिनन्दन तथा बधाई के पात्र हैं।

ऐसे पावन अवसर पर हम अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वे इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें। व्यक्ति की भौतिक काया चली जाती है, लेकिन विचार अमर होते हैं। विचारों को व्यक्त करने वाले अक्षरों को "ब्रह्म" कहा है। उनका कभी क्षय नहीं होता।

७/८, दरियागंज
नई दिल्ली
८ सितम्बर १९८०

—यशपाल जैन

संकटपूर्ण स्थिति व विवेक का मार्ग

विघटन नहीं : संगठन : देश रक्षा सर्वोपरि !

इस समय समूचे देश में और खास तौर पर कांग्रेस संगठन में विचित्र संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई है। कांग्रेस पर ही देश के वर्त्तमान और भविष्य का दायित्व है। इसलिए कांग्रेस कर्मियों को वर्त्तमान स्थिति पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए, ताकि संकट को टाला जा सके और देश को प्रगति के पथ पर आगे वढ़ाया जा सके। वर्त्तमान दुरावस्था का प्रमुख कारण राष्ट्रीय भावना का सतत ह्रास है। सर्वत्र राष्ट्रीय भावना का लोप होता दिखाई दे रहा है। जगह-जगह क्षेत्रीय संकीर्णता और गुटवन्दी सर उठा रही है। ऐसा लगता है कि सभी लोग राष्ट्र को भूलकर अपने संकीर्ण क्षेत्रीय हितों अथवा निजी स्वर्थों पर अपनी समूची शक्ति केन्द्रित करने में लगे हैं। इस महारोग ने कांग्रेस-कर्मियों को बुरी तरह जकड़ लिया है।

एक जमाना तो वह था जव सभी कांग्रेस कर्मी राष्ट्र के लिए निजी हितों को भूलकर सर्वस्व बलि देने को प्रस्तुत रहते थे और अपने नेता के आह्वान पर प्राण हथेली पर रखकर मैदान में कूद पड़ते थे और एक जमाना यह है कि कोई किसी की सुनवाई नहीं करता। राष्ट्र हित का तकाजा भुला दिया गया है और समय का आह्वान अनसुना किया जा रहा है। आज कहीं अनुशासन नजर नहीं आता। हम जिन्हें अपना नेता मानते हैं उनकी बात भी सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। जाहिर है कि यह स्थिति काफी खतरनाक है और देश के लिए हानिप्रद है।

देश की चिंतनीय अवस्था !

देश की अवस्था चिंतनीय है, यह निर्विवाद रूप से माना जा रहा है। हाल ही में कांग्रेस संसदीय दल की बैठक में देश की राजनीतिक स्थिति पर विचार के दौरान इस वारे में शिकायतें सुनने को मिली थी। साधारण सदस्यों को चोटी के नेताओं से यह शिकायत थी कि उनमें आपसी एकता का अभाव है, जिससे वाहर बुरा असर पड़ता है। दूसरी शिकायत यह थी कि कांग्रेस रचनात्मक कार्य के बजाय राजकीय कार्य को अधिक महत्व देने लगी है और वरिष्ठ नेताओं को विधान-मण्डलों व संसद में भेजा जा रहा है। इससे संगठन कमजोर होता है।

कांग्रेस संसद सदस्यों की उक्त शिकायतों को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता है। वास्तव में इस बार उल्टी गंगा वह चली। सही नेता

पीछे धकेले जा रहे हैं। यह सही है कि यदि कांग्रेसी नेताओं में पूर्ण एकता हो और सत्ता के बजाय रचनात्मक एवं संगठनात्मक कार्यों की ओर ज्यादा ध्यान दिया जाए तो कांग्रेस संगठन के साथ-साथ देश का भी कल्याण होगा।

विश्व में कांग्रेस ही सर्वोच्च संगठन

आज भी देश में कांग्रेस का मुकाबला करने वाला कोई नहीं है। विश्व में कांग्रेस ही सर्वोपरि संगठन है।

यादवी युद्ध की पुनरावृत्ति न हो !

कांग्रेस की पुरानी पराक्रमशाली सेना अपराजेय है। उसे केवल गृहकलह ही समाप्त कर सकती है ! ईश्वर न करे कि यादवी युद्ध की पुनरावृत्ति हो, लेकिन यह शत प्रतिशत सच है कि विरोधी दलों की वर्त्तमान शक्ति कांग्रेस की अन्दरूनी फूट पर ही आधारित है। जिस दिन यह फूट नहीं रहेगी उसी दिन विरोधी दलों की शक्ति ताश के पतों की तरह बिखर जाएगी।

केवल गांधीजी की दुहाई नहीं दी जाय

हम गांधी जी का नाम लेकर मत मांगने जाते हैं और गांधीजी के नाम पर ही हमको मत मिलते हैं। लेकिन क्या हम गांधीजी के साथ अन्याय नहीं कर रहे ? गांधीजी ने आत्म-बलि और राष्ट्र-हित को सर्वोपरि माना था। आज हम इन आदर्शों से कितने दूर हट गए हैं ? ऐसा लगता है कि आज हम अपने निजी स्वार्थों के लिए ही गांधीजी के नाम का उपयोग कर रहे हैं।

देश रक्षा—सर्वोपरि

आपसी लड़ाई आत्मघाती होगी ?

राष्ट्र स्थिर और जड़ नहीं रहेगा। वह आगे बढ़ेगा ही। कांग्रेस तो इस पावन प्रगति-यज्ञ में निमित मात्र है। अतः हमको यह चेष्टा करनी चाहिये कि निजी स्वार्थों को भुला कर अपना ऐतिहासिक दायित्व पूरा करें। आपसी लड़ाई आत्मघाती होती है। जिस डाल पर बैठे हैं, उसे काटने से हमको ही नुकसान होगा। देश बचा तो हम सभी बच जायेंगे और यदि देश नहीं बचा तो कोई नहीं बच सकता। हम सब एक ही मकान में बसे हुए हैं। इस मकान को आग लगाने से हमारे पड़ौसी ही नहीं, हम स्वयं भी जल मरेंगे। अतः हम को आपसी लड़ाई को भूलकर देश-सेवा में संगठित रूप से जुट जाना चाहिये।

साथियों को पीछे नहीं धकेला जाय

इन दिनों सर्वत्र चुनाव-चर्चा है। अनेक राज्यों के कच्चे चिट्ठे सामने आये हैं, जिन्हें जान कर दिल को सदमा लगता है। वह जीत बेमानी है, जो अपने साथियों को धकेल कर प्राप्त की जाए। आज बड़े से बड़े नेता, इसी उन्माद से ग्रस्त हैं। सब अपने लिए बड़े से बड़े पद पाने के लिये सचेष्ट हैं। दूसरों के लिए कोई नहीं सोचता। वे सारे के सारे पागल से हो गये दीखते हैं, जिस पर उनकी दृष्टि सिक्के का एक ही पहलू देख पाती है। किसी को भी आगा-पीछा देखने की फुर्सत नहीं जान पड़ती। सभी सत्ता के मद में रत हो रहे हैं।

सही उत्तर विघटन नहीं: संगठन
देश सत्ता से बड़ा : किसी की बपौती नहीं

लेकिन इस चुनौती का सही उत्तर विघटन नहीं है। जो लोग कांग्रेस के सिद्धान्तों से प्यार करते हैं उन्हें असंतुष्ट होकर कांग्रेस से अलग नहीं होना चाहिए। अब समय आ गया है कि विवेकवान, राष्ट्रभक्त तथा निर्भीक कांग्रेस कर्मी आगे बढ़ कर राष्ट्र-सेवा का कार्य सम्हाले। देश किसी की बपौती नहीं है, सभी की संयुक्त सम्पदा है। देश सत्ता से बड़ा है।

राष्ट्रीय भावना का पुनरुद्धार हो !

अतः सत्ता का मोह छोड़ कर सच्चे कार्यकर्त्ताओं को राष्ट्र-कल्याण के रचनात्मक कार्य में जुट जाना चाहिए और अमांगलिक प्रवृत्तियों के विरूद्ध जोरदार आवाज उठानी चाहिए। मंहगाई लगातार बढ़ती जा रही है, मुद्रा की कीमत घटती जा रही है और चारों ओर अराजकता का वातावरण है। विवेकी तत्वों को संकटपूर्ण स्थिति का निराकरण करने के लिए एक ही रास्ता निकालना चाहिए। राष्ट्रीय भावना का पुनरुद्धार बहुत जरूरी है।

युवक आगे आयें : पर विनाश से बचें

मुझे देश के जवानों पर पूरा-पूरा भरोसा है। वे बढ़कर आगे आयें पर विध्वंस से बचें और देश की बागडोर अपने सशक्त हाथों में सम्हालें। जो थक चुके हैं वे विश्राम करें और नये रक्त को आगे आने का अवसर प्रदान करें। पुराने लोगों के अनुभवों के आलोक में तरूणों की कर्मठता देश को आगे बढ़ाने में सफल होगी ऐसी मुझे आशा है।

नवजीवन, उदयपुर, ता० ३०-१३-६६

गांधीजी का ट्रस्टीशिप का सिद्धांत वर्तमान संदर्भों में

'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' दर्शन भारत की प्राचीन ऐतिहासिक परम्पराओं और रीतियों द्वारा सम्मत मूलतः भारतीय दर्शन है, जिसने प्रायः हर युग में भारतीय समाज के सभी पक्षों और क्रियाओं को निर्देशित किया हैं। यही दर्शन वस्तुतः गांधीवाद है। बापू ने समाज एवं काल की सभी समस्याओं का समाधान उक्त दर्शन के आधार पर खोज कर प्रस्तुत किया और भारतीय जन मानस को इस दर्शन की प्रभावशीलता से संवेदित किया। उन्होंने व्यष्टि और समष्टि के प्रति नयी दृष्टि प्रदान की और यह प्रतिपादित किया कि एक मात्र इकाई होते हुए भी व्यक्ति का अस्तित्व पृथक होता है। सामाजिकता की विशाल परिधि में व्यक्तिवाद की महत्ता का प्रतिपादन एक नयी वात थी और इसीलिये गांधीजी को महान युगपुरुष माना जाता है।

जव पाश्चात्य जगत मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से आन्दोलित था और वर्ग-संघर्ष की अनिवार्यता पर जन-विश्वास जमता जा रहा था तव गाँधीजी ने वर्ग-सहयोग का नया, मौलिक नारा देकर विश्व को चमत्कृत कर दिया। उन्होंने समाज के अन्दर विभिन्न वर्गों के अस्तित्व को स्वीकार अवश्य किया, लेकिन हितों के टकराव अथवा संघर्ष की अनिवार्यता को कभी मान्यता नहीं दी। वर्ग-सहयोग वर्ग-भेद से उत्पन्न तनावों को दूर करने का शांतिपूर्ण एवं कल्याणकारी मार्ग सिद्ध हुआ है और जो लोग मार्कस् के वर्ग-संघर्ष विषयक सिद्धान्त की ओर उन्मुख होने लगे थे वे अब इस नये विकल्प की ओर आकृष्ट हो उठे हैं:

सर्वोदय आन्दोलन इसी गांधीवादी सिद्धान्त की स्वाभाविक निष्पत्ति है। जयप्रकाश नारायण, नवकृष्ण चौधरी आदि अनेक जन-नेता मार्क्सवाद के मोह से मुक्त होकर सर्वोदय में दीक्षित हुए और आज भी सर्वोदय आन्दोलन में ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है, जो अन्यथा मार्क्सवाद की ओर प्रवृत्त होते। तेलांगाना हिंसक साम्यवादी आन्दोलन का उत्तर सर्वोदय ने दिया और एक ही समाधान के लिए दूसरा श्रेष्ठतर मार्ग सुझाया। गांधीजी द्वारा प्रतिपादित ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त को इसी पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है।

× × ×

ट्रस्टीशिप सिद्धान्त क्या है? गांधीजी ने अपने इस सिद्धान्त की व्याख्या सर्वप्रथम अहमदाबाद में की थी, जहाँ वस्त्र उद्योग में मालिकों और मजदूरों के बीच संघर्ष चल रहा था। इसके बाद बम्बई, कलकत्ता आदि अन्य

औद्योगिक नगरों में उद्योगपतियों और पूँजीपतियों से बातचीत के दौरान उन्होंने इस सिद्धान्त की विस्तृत रूप-रेखा प्रस्तुत की। वर्ग-सहयोग के मूल सिद्धान्त पर आधारित 'ट्रस्टीशिप' वर्ग-संघर्ष की अनिवार्यता का खण्डन करता है।

गांधीजी ने बताया कि यदि धनी लोग स्वयं को समाज का कल्याणकारी उपकरण मान कर चलें और अपनी धन-सम्पदा को समाज की धरोहर समझें तो वर्ग-संघर्ष उत्पन्न हो ही नहीं सकता। उन्होंने उद्योगपतियों को यह सुझाव दिया कि वे स्वयं को समाज का ट्रस्टी समझें और अपनी पूंजी को ट्रस्ट मानें। इस ट्रस्ट में से वे केवल अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए अपेक्षित धन लेने के अधिकारी हैं और शेष पूंजी समाज-कल्याण में लगाएँ।

उनका मत था कि वर्ग संघर्ष तभी उत्पन्न होता है, जब पूँजीपति अपनी पूंजी को समाज की धरोहर न मान कर उनका उपभोग करता है। फलतः समाज का विभिन्न वर्ग उससे क्षुब्ध हो उठता है और दोनों वर्गों के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है।

गांधीजी ने पूँजीपतियों और उद्योगपतियों को समझाया कि अर्जित पूँजी में समाज के श्रमी वर्ग की बराबर की साझेदारी है क्योंकि पूंजी मात्र से उत्पादन नहीं हो सकता और उत्पादन बगैर आय नहीं हो सकती। चूँकि उत्पादन और उत्पादन में पूँजी और श्रम का विनियोजन जरूरी होता है, अतः अर्जित आय में अनेक व्यक्तियों की साझेदारी होती है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज के बगैर नहीं रह सकता और समाज से अलग पूंजी का कोई महत्व नहीं है। अतः पूँजी पर व्यक्ति का नहीं, समूचे समाज का अधिकार है।

गांधीजी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त सामाजिक अर्थशास्त्र की नयी उपलब्धि है। इसकी सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि समाज के सभी वर्गों के बीच सद्भाव और सौहार्द कायम रहता है। इसके विपरीत, वर्ग-संघर्ष से वर्गों के बीच शत्रुता बढ़ती है, रक्तपात होता है, सामाजिक अशान्ति बढ़ती है और प्रगति अवरूद्ध होती है। ट्रस्टीशिप सिद्धान्त श्रम और पूंजी के बीच तालमेल स्थापित करता है जबकि वर्ग-संघर्ष श्रम और पूँजी के बीच संघर्ष का नाम है। जाहिर है कि संघर्ष से सामाजिक शान्ति भंग होती है और विकास का गति में बाधा पड़ती हैं। दूसरी ओर वर्ग-सहयोग से सामाजिक शान्ति कायम रहती है और समृद्धि के वितरण के फलस्वरूप विकास की गति को बढ़ावा मिलता है।

ट्रस्टीशिप सिद्धान्त की उपयोगिता का दूसरा उज्ज्वल पक्ष यह है कि पूँजीका अधिकतम सदुपयोग होता है। जो व्यक्ति अपनी धन-सम्पदा को समाज की धरोहर मानता है वह फिजूल खर्ची नहीं कर सकता। दूसरी ओर श्रमिक वर्ग भी आय में हिस्सेदारी की भावना से प्रेरित होकर पूरे उत्साह से उत्पादन में जुटे रहते हैं। धन-सम्पदा के प्रति स्वामित्व का भाव न होने के कारण अस्वस्थ प्रतियोगिता की गुंजाइश नहीं रहती हैं। समाज के प्रति लगाव के कारण उत्पादन स्तरीय होता है और मुनाफे का लोभ सीमित रहता है।

देश निरंतर संकट की ओर बढ़ रहा है। जनसंख्या तेजी से बढ़ रही हैं, बेरोजगारी बढ़ती जा रही हैं और फलस्वरूप सामाजिक शान्ति भंग होने की आशंका बलवती होती जा रही हैं। असमानता से सामाजिक असन्तोष बढ़ रहा है। ऐसी स्थिति में गांधीजी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त ही देश को पतन और अराजकता से बचा सकता है। इस सिद्धान्त का निरादर देश और समाज के लिए खतरनाक सिद्ध होगा जैसा कि देश के कई भागों में नजर आने लगा है। पूंजी और श्रम के बीच मन-मुटाव के कारण कई राज्यों में अराजकता व्याप्त हैं। हड़तालें, तालाबन्दियों और घेराव ने जहाँ प्रगति को आघात पहुंचाया है, वहीं दूसरी ओर समाज की सुख-शान्ति को भी भंग किया है।

कुछ राजनीतिक दल इस स्थिति को अधिक उग्र बनाने की ओर सचेष्ट हैं, ताकि भविष्य में उसका राजनीतिक लाभ उठाया जा सके। वर्ग-संघर्ष को तेज करने की चेष्टाएँ की जा रही हैं और इस उद्देश्य से राजनीतिक सत्ता का भी उपयोग किया जा रहा है, इससे भारत का भविष्य भयावह सम्भावनाओं की परिधि में आ गया है। यदि स्थिति की गम्भीरता को महसूस ,नहीं किया गया तो परिणाम भयंकर होंगे।

ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त ही वर्तमान संकट का सही समाधान है। समाज के सभी वर्गों को अपनी मनोवृत्ति बदल कर संघर्ष के बजाय सहयोग का पथ ग्रहण करना चाहिए। पूंजीपतियों और उद्योगपतियों को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए। वे ट्रस्टीशिप से सिद्धान्त को अमल में लायेंगे तो उनसे देश का कल्याण होगा और साथ ही स्वयं उनका भी हित होगा, अन्यथा वर्ग-संघर्ष का ज्वार सभी को आत्मसात कर लेगा। इस दिशा में प्रयास तत्काल शूरू हो जाने चाहिए। समय निकल गया तो फिर पछताने से कोई लाभ नहीं होगा।

नवजीवन, उदयपुर, ता० २-१०-६९

लाटरी के रूप में जुए की नई प्रतिष्ठा—

हवा में भांग समा गयी है !

कहने वाले कहते हैं कि दुनिया में सबसे पुराना धंधा वेश्यावृत्ति और सबसे पुराना जलेतर पेय सुरा है। लेकिन अभी तक किसी ने यह नहीं कहा कि दुनियाँ का सबसे पुराना मनोविनोद जुआ है। भले ही जुआ सबसे पुराना मनोविनोद न हो लेकिन वह प्रागैतिहासिक अवश्य है। इसी क्रम में हिंसा, रक्तपात, नृशंसता, चोरी, डाका सभी अपराध शामिल है। ये अपराध और दुष्कर्म प्राचीन क्यों न रहे हों, पर निन्दनीय अवश्य माने गये हैं। संसार के प्रायः सभी समाजों में इन अपराधों व दुष्कर्मों को निन्दनीय माना जाता है, यद्यपि इनका प्रचलन अभी भी उसी ज़ोर-शोर से चालू है।

किसी भी समाज ने इनकी प्राचीनता या परम्परा को ध्यान में रख कर इनको प्रतिष्ठा प्रदान नहीं की है। केवल नेपाल ही एक ऐसा देश है, जहां जुए को कानूनी करार कर दिया गया है और दीपावलि पर्व पर इसे धार्मिक संस्कार के रूप में ग्रहण किया गया है। नेपाल का राजधर्म हिन्दूधर्म है। लेकिन धर्म निरपेक्ष भारतवर्ष ने इस क्षेत्र में इस धर्म प्रधान राज्य को भी पीछे छोड़ दिया है और लाटरी के रूप में जुए को नयी प्रतिष्ठा प्रदान की है।

लाटरी क्या है :

लाटरी क्या है ? यह जुए का आधुनिक सम्मानित स्वरूप मात्र है और जुए की भांति अज्ञानी जन समुदाय के कर्म-विहीन भाग्यवाद के आर्थिक शोषण का नवीनतम साधन है। भारतीय जनता दुर्भाग्य से भाग्यवादी रही है। वह यही मानती रही है कि :

"यत्पूर्वं विधिन ललाटलिखित तन्मार्जितुं कः क्षमः।"

इसलिए मूलकदास जैसे सन्त भी कहते रहे कि :

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दासमलूका कह गए, सबके दाता राम॥

कृष्ण का कर्मयोग भी निष्प्रभ !

यह भाग्यवाद यहाँ इतना प्रबल रहा है कि भगवान कृष्ण द्वारा प्रचारित निष्काम कर्मवाद भी इसे पराजित नहीं कर पाया। भगवान श्रीकृष्ण ने तो यहाँ तक कहा था कि :

भुंजते ते त्वघं पापा।
ये पचन्त्यामकारणात् ।।

(अन्य लोगों की परवाह किए वगैर, यज्ञ किए वगैर, परिश्रम किए वगैर, जो भोजन करता है वह केवल पाप खाता है।)

यह विचित्र विडम्बना है कि भगवान श्रीकृष्ण के देश में गीता की आत्मा का हनन किया जा रहा है और राज्य द्वारा जनता की भाग्यवाद विषयक कमजोरी का दुरुपयोग किया जा रहा है।

भारत : एक विचित्र देश

भारतवर्ष निश्चय ही एक विचित्र देश है। यहाँ 'कथनी और करनी' के वीच हमेशा अन्तर रखा जाता है। जो वात यहाँ सिद्धान्तों में प्रस्तुत की जाती है, वह व्यवहार में भ्रष्ट हो जाती है। "सत्यमेव जयते" का नारा हमारा राष्ट्रीय आदर्श है। लेकिन असत्य पर आचरण और उसका पोषण हमारी सामान्य नीति है। यदि ऐसा न होता तो 'सत्यमेव जयते' का नारा देने वाली सरकार लाटरी जैसे दुष्कर्म को प्रोत्साहित नहीं करती। वह वेश्यावृत्ति और सुरापान को भी देश से निर्मूल कर सकती थी। लेकिन वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। इस अपावन साधन को राजस्व वढ़ाने में इस्तेमाल किया जा रहा है।

गुजरात के सिवा सभी राज्यों में लाटरी

स्वराज्य से पूर्व, ब्रिटिश शासनकाल में, हर अनुचित कार्य का विरोध किया जाता था और विरोध का नेतृत्व वे तत्व करते थे, जो आज सत्तारूढ़ हैं। अंग्रेजों के प्रस्थान के वाद इन नेताओं का रवैया भी वदल गया और उन सभी कार्यों को राज्याश्रय प्रदान किया गया, जिनका पहले विरोध किया गया था। आज गुजरात के अलावा प्रायः सभी राज्य सरकारें जोरों से लाटरी चला रही है।

'फैन्सी फेयर' के आयोजन बन्द

मुझे स्मरण है कि काफ़ी अर्से पूर्व, कलकत्ता में दिसम्बर मास के अन्तिम सप्ताह में 'फैन्सी फेयर' के आयोजित होते थे। उनमें 'लक्की सेवन' (भाग्य लक्षण-७) नामक ऐसे खेल खेले जाते थे, जिनमें लोग अपना धन दांव पर लगा कर हार जाते थे। सारी की सारी धनराशि इस खेल के आयोजक

की जेवों में पहुंच जाती थी। जनता की ओर से इस खेल का भारी विरोध शुरू हुआ। अन्ततः यह खेल बन्द हो गया।

न्यूयार्क काटन का सट्टा भी बन्द !

इसी प्रकार न्यूयार्क काटन के भावों पर जो सट्टा होता था, वह भी धीरे-धीरे बन्द हो गया। इन बुरे खेलों को बन्द कराने का श्रेय जागृत जनमत को है। लेकिन घुड़दौड़, ताश, आदि जुए के खेल आज भी जारी है। इन जुए के खेलों पर कानूनी रोक प्रभावहीन है। अब खुद सरकार ने लाटरी चला कर जुए का एक नया साधन प्रस्तुत कर दिया है।

लाटरी : पाप की कमाई !

हर लाटरी में कई लाख लोगों का धन लगता है। लाभ कुछ गिने-चुने लोगों को और सरकार को होता है। पुरस्कृत लोगों और टिकट बेचने वालों को ही लाखों लोगों की खून-पसीने की गाढ़ी कमाई का अधिकांश बिना परिश्रम मिल जाता है। कौन नहीं जानता कि बिना परिश्रम की कमाई पाप होती है।

धर्मराज युधिष्ठिर जैसे इतिहास पुरुष भी इस पाप का फ़ल भोगने से नहीं बच सके थे। वे जुए में सभी कुछ और अपनी पत्नी द्रौपदी को भी हार गए थे। शेष चारों भाइयों ने भी उन्हें इस पाप कर्म से नहीं रोका फलतः महाभारत का युद्ध जीतने के बाद भी वे विजय का फल नहीं भोग सके और हिमालय पर जाकर गल गए। इसी प्रकार प्रबल प्रतापी पराक्रमी राजा नल भी जुए में अपना सर्वस्व हार कर लम्बे अर्से तक नाना प्रकार के कष्ट भोगते रहे, वेद में यह गलत नहीं कहा गया है कि :—

"अक्षेर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व।
वित्ते रमस्व बहुमन्यमान।।"

अर्थात् जुआ मत खेल, खेती कर और उससे जो धन धान्य तुझे मिले उसी में सन्तोष कर और मौज से रह।

'आराम हराम है' नेहरू का नारा कहाँ ?

स्व० पं० नेहरू ने नारा दिया था कि 'आराम हराम है।' इस नारे का अर्थ है कि हर व्यक्ति को परिश्रम करना चाहिये। लेकिन आज इस

महापुरुष के उत्तराधिकारियों ने इस नारे को गड्ढे में दफना दिया है। आज का नारा यह है कि काम न करो, लाटरी से भाग्य आजमाओ और बिना परिश्रम लखपति बनने की कामना करो।

यही कारण है कि आज देश का समूचा वातावरण बिगड़ गया है। हर ओर विनाशकारी कार्य हो रहे हैं। दुराग्रह, धरना, हिंसा और उपद्रव दैनिक जीवन के अंग हो गये हैं। ऐसे लगता है कि कुएं में भाँग पड़ गयी है और सभी लोग उस कुएं का पानी पीकर अपना होश गँवा बैठे हैं। यह कहना ज्यादा सही होगा कि भाँग मन में समा गयी है। मैंने कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश मित्र से ये बातें कहीं थीं और उन्होंने इनका अनुमोदन किया।

दुष्प्रवृत्तियों को बढ़ावा :— प० बंगाल में गांधी चित्रों की होली !

लाटरी ने न केवल हरामखोरी को बढ़ावा दिया है, अपितु अंधविश्वासों को भी पनपाया है। लाटरी के टिकट खरीदने वाले लोग शुभ और अशुभ नम्बरों पर विशेष ध्यान देते हैं और पुरस्कार जीतने के लिए विविध अनुष्ठान करते हैं। इस हरामखोरी से निराशा और कुण्ठा फैल रही है। प० बंगाल में गांधीजी के चित्रों व साहित्य की होली जलाई जा रही है और सार्वजनिक सम्पदा फूंकी जा रही है। शर्म की बात है कि सरकार इन बातों की रोकथाम नहीं कर पा रही है।

ऐसा लगता है कि हमारी बुद्धि का विनाश हो गया है और विनाशकाल नजदीक आ गया है। चरित्र निर्माण और देश निर्माण के कार्य, दर गुजर कर दिए गए हैं। जिनके पास सत्ता नहीं है, वे सत्ता हथियाने के लिए हर अनैतिक साधन को अपना रहे हैं और जो सत्ता प्राप्त हैं, वे अपनी गद्दी कायम रखने तथा अपने विरोधियों को नीचा दिखाने में व्यस्त हैं। नेत्र और मस्तिष्क, दोनों को लकवा मार गया है। सर्वत्र हवा में भाँग समा गयी है। सभी नशे में पागल होकर झूम रहे हैं।

अभी भी समय है कि विनाश के बढ़ते चरणों को रोका जाय। सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिये और दुष्कर्मों पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिये। आज जुए को वैध बनाया गया है तो कल वेश्यावृत्ति और सुरापान को वैध किया जा सकता है। इन दुष्कर्मों का अन्त आखिर कहाँ होगा ?

नवजीवन, उदयपुर, ता० १-६-७०

एक स्वतन्त्र सामयिक चिंतन—

देश की शोचनीय आर्थिक दशा !

'आश्वासन और यथार्थ के बीच दरार उतनी ही चौड़ी है. जितनी कथनी और करनी के वीच।' नारे मोहक हो सकते हैं और चुनाव में मत वटोरने में सहायक भी सिद्ध हो सकते हैं, पर वे समस्या के समाधान के लिये जादुई चिराग सिद्ध नहीं होते। 'गरीवी हटाओ' के नारे ने श्रीमती इंदिरा गाँधी और उनके दल को लोकसभा के गत मध्यावधि चुनावों में अप्रत्याशित सफलता प्रदान की, लेकिन उसके वाद से गरीवी कितनी हट पायी है या हटने वाली है, इस विषय में आम जनता को, श्रीमती गांधी के मतदाताओं को, सुनिश्चित जानकारी नहीं होगी।

तथ्य यह है कि सत्तारूढ़ दल और सरकार द्वारा वार वार दिये गये आश्वासनों के वावजूद देश और जनता की आर्थिक अवस्था में कोई सुधार नहीं हो पाया है। इसके विपरीत स्थिति निरन्तर विगड़ती जा रही है। अधिकृत आंकड़ों के अनुसार उत्पादन और निर्यात में घटोतरी हो रही है, कारखाने बंद होते जा रहे हैं। सूदरोज़गार व कर भार वृद्धि जारी है प्रति व्यक्ति की औसत आय में घटोतरी हो रही है और राष्ट्रीय विकास की रफ्तार काफी घटने लगी है।

दूसरी ओर केन्द्रीय व राज्य सरकारें बैंकों व जनता से अधिकाधिक ऋण ले रही हैं। घाटे की अर्थव्यवस्था और मुद्रास्फीति के फलस्वरूप लोगों की वास्तविक आय घट रही है। जीवनोपयोगी वस्तुओं और कच्चे माल की कीमतें तेज़ी से बढ़ती जा रही हैं।

सर्वांगीण आर्थिक संकट का वास्तविक चित्र रिजर्व बैंक आफ इंडिया की एक ताजा रिपोर्ट से प्रकाश में आया है। यह रिपोर्ट जून १९७० से जून १९७१ तक की आर्थिक स्थिति का विवेचन प्रस्तुत करती है। रिपोर्ट में सरकार को चेतावनी दी गयी है कि यदि शीघ्र ही प्रभावी सुधारात्मक कार्रवाई न की गयी तो महंगाई बेकाबू हो जायेगी और समूचा अर्थतंत्र गहन संकट में फंस जायेगा। केन्द्रीय व राज्य सरकारों ने घाटे की अर्थ व्यवस्था अपना कर मुद्रास्फीति को जबर्दस्त बढ़ावा दिया है और यदि मुद्राप्रसार व वास्तविक आय के बीच समुचित संतुलन स्थापित न किया गया तो मंहगाई पर नियंत्रण न किया जा सकेगा।

रिजर्व बैंक ने अपनी उक्त रिपोर्ट में बतलाया है कि कीमतों में द्रुत वृद्धि की प्रवृत्ति १९७०-७१ के प्रारम्भ से शुरू हुई। यद्यपि वर्ष मध्य में स्थिति कुछ सुधरी पर बाद के महीनों में पुनः मंहगाई का चक्र तेजी से चला

इस दौरान कच्चे माल की कीमतों में भारी वृद्धि हुई, जिससे औद्योगिक उत्पादन और उसकी कीमतों पर बुरा प्रभाव पड़ा। कपास व सूत की कीमतों में १३.९ प्रतिशत, जूट की कीमतों में १४.८ प्रतिशत और लोह व इस्पात की कीमतों में १०.४ प्रतिशत वृद्धि हुई। गत वर्ष इनकी कीमतों में क्रमश: ७,६.८ और ७.४ प्रतिशत ही वृद्धि हुई थी। जाहिर है कि १९७०-७१ में मंहगाई तेजी से बढ़ी। कागज और रासायनिक पदार्थ भी इस हवा से अछूते न रह सके।

यद्यपि विगत ४ वर्षों से फसलें अच्छी हो रही हैं, पर खाद्यान्नों व कृषि उत्पादनों की कीमतों में वृद्धि का सिलसिला निर्वाधगति से जारी है। सबसे अधिक वृद्धि दालों की कीमतों में हुई है। इस वर्ष अगस्त तक जीवनोपयोगी वस्तुओं के देशनांकों में ६ की वृद्धि हो चुकी थी और आशंका है कि वर्ष के अन्त तक मंहगाई में १० प्रतिशत से ज्यादा वृद्धि हो चुकेगी।

मंहगाई से आम जनता तो त्रस्त है ही, व्यापारी वर्ग भी परेशान है। कच्चे माल की कमी और मंहगाई के साथ पूंजी बाजार की मन्दी भी औद्योगिक गत्यावरोध का कारण बनी हुई है। मँहगाई बढ़ने के कारण खपत घट रही है और फलत: उत्पादन घटाना पड़ रहा है, सरकार की गलत औद्योगिक व श्रम-नीतियों ने भी औद्यौगिक विकास को क्षति पहुंचाई है। श्रम-अशान्ति निरन्तर बढ़ रही है, फलस्वरूप जन-दिवसों की क्षति और उत्पादन में घटोतरी हो रही है।

रिजर्व बैंक ने अपनी उक्त वार्षिक रिपोर्ट में केन्दीय व राज्य सरकारों की आर्थिक अनुशासनहीनता एवं विवेकहीन स्वेच्छाचारिता की बड़ी भर्त्सना की है। मुद्रास्फीति के लिये बैंक ने सरकार को जिम्मेदार ठहराया है। रिपोर्ट में दिये गये आंकड़ों के अनुसार जून १९७० से जून १९७१ तक सरकार ने बैंकों से जो ऋण लिये उनकी मात्रा पिछली समान अवधि में लिये गये ऋणों से ९२४ करोड़ रु० ज्यादा थी। ऋणमात्रा में केवल २ करोड़ की वृद्धि हुई थी। जाहिर है कि केन्द्रीय व राज्य सरकारें भारी गैर-जिम्मेदारी से काम कर रही हैं।

राज्य सरकार भी बैंकों से केन्द्रीय सरकार के मुकाबले में दुगुने ऋण ले चुकी हैं। उनके बजटों में घाटे बढ़े हैं। राज्यों को २२५ करोड़ रु० के घाटे हुए, जो अनुमानित घाटे से ९१ करोड़ रु० ज्यादा थे। सन् १९७०-७१ के दौरान राज्यों के घाटों में ३३२ करोड़ रु० की वृद्धि हुई, जब कि गत वित्त वर्ष में केवल १३ करोड़ रु० की वृद्धि हुई थी। सन् १९७०-७१ में

बैंकों से केन्द्रीय सरकार को प्राप्त ऋणराशि में १०७ करोड़ रु० की और राज्यों के ऋणभार में २२५ करोड़ रु० की वृद्धि हुई।

सरकारों को बैंकों से कर्जे लेने की आदत पड़ गयी प्रतीत होती है। जून १९७१ तक केन्द्र पर ३७५ करोड़ रु० और राज्यों पर ९३ करोड़ रु० ऋणभार बढ़ा जबकि गत वित्त वर्ष में ऋणवृद्धि क्रमशः ८३ और ९ करोड़ रु० हुई थी। राज्य सरकारें इस वर्ष अभी तक ३७८ करोड़ रु० के ओवर ड्राफ्ट ले चुकी हैं, जब कि गत वर्ष ६ राज्य सरकारों ने ८३ करोड़ रु० के ओवर ड्राफ्ट लिये थे। ओवर ड्राफ्ट उन राज्यों ने लिये हैं, जिन्होंने अपने बजटों में ६७ करोड़ रु० के 'सरप्लस' दिखलाये थे। ये मुनाफे वस्तुतः १७० करोड़ रु० के घाटों में परिणित हो गये।

दु:ख की बात यह है कि इन राज्यों ने कर्जे लेकर १८३ रु० गैर योजना व्यय के अन्तर्गत खर्च किये। रिजर्व बैंक ने गैर योजना व्यय में बढ़ोत्तरी पर भारी आपत्ति की है।

पश्चिम बंगाल की दुर्दशा :

देश में सबसे अधिक दुर्दशा प० बंगाल की है। यह राज्य औद्योगिक उत्पादनों में शीर्ष पर था, पर अब महाराष्ट्र से पिछड़ गया है। यदि यही रफ्तार रही तो प० बंगाल तीसरे नम्बर पर आ जायेगा।

सन् १९६७ से १९७१ की कालावधि में, पश्चिम बंगाल में ३०० इंजिनीयरिंग संस्थान बन्द हुए, जिनमें से केवल कुछेक ही खुल सके हैं। अभी भी २८३ कारखाने बन्द पड़े हैं, जिनके फलस्वरूप १.२५ लाख कर्मचारी बेरोजगार हो गये हैं। औद्योगिक उत्पादन का ह्रास निरन्तर जारी है। इस्पात के उत्पादन में घटोतरी भी तेजी से हो रही है। लगभग ९० लाख टन कोयला झरिया-रानीगंज कोयला क्षेत्रों में बेकार पड़ा हुआ है, क्योंकि रेलवे इस माल को उठाने में असमर्थ है। खान क्षेत्र में मजदूर संगठनों के बीच आपसी झगड़ों के कारण स्थिति तनावपूर्ण है और कई खानें बन्द हो गयी हैं। अतः कोयला उत्पादन ठप्प पड़ा है, जब कि देश में कोयले की मांग बढ़ रही है।

जूट और चाय उद्योग कुछ अच्छी हालत में है, पर हड़तालों के कारण मुनाफों में भारी कमी हो रही है। सरकार की श्रमनीति भी औद्योगिक विकास में बाधक सिद्ध हो रही है, क्योंकि वह मजदूरों को बढ़ावा दे रही है और उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही है।

वस्त्रोद्योग में उत्पादन घट रहा है और ८० मीलें वन्द पड़ी हैं। दीर्घकालीन औद्योगिक गतिरोध के फलस्वरूप पश्चिम बंगाल में २५ लाख युवक वेरोजगार पड़े हुए हैं जिनमें २ लाख विज्ञान अथवा इंजिनीयरिंग के प्रशिक्षित स्नातक हैं और अन्य १३ लाख शिक्षित हैं।

इस पृष्ठभूमि में निजी क्षेत्र उद्योगों में न तो अधिक पूंजी लगा पा रहा है और न ही सरकारी वित्तीय संस्थायें पूँजी विनियोजन में अपेक्षित सहायता दे रही है। दोषपूर्ण श्रमनीति ने औद्योगिक विकास के पाँव जकड़ रखे हैं। यदि सरकार ने समय रहते अपना रवैया न सुधारा तो एक गहरे आर्थिक संकट में ग्रस्त हो जायेगा, जिसका प्रभाव सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रों पर भी अवश्य ही पड़ेगा।

नवजीवन, उदयपुर, ता० २१-११-७१

दान किसको दें ?

संस्कृत भाषा में दा धातु का अर्थ होता है—देना। इस धातु से दान शब्द बनता है, जिसका अर्थ है देने की क्रिया। हिन्दू धर्म तथा सारे धर्मों में दान की वहुत महत्ता है। इसे एक महान् गुण माना गया है। यह एक अति प्राचीन प्रथा है। भूमि, वस्तु और द्रव्य तीनों प्रकार के दानों की तालिका तैयार की जाय तो मालूम होगा कि संसार में अरबों रुपये प्रतिवर्ष दान में दिए जाते हैं, किन्तु उस दान का किस सीमा तक वास्तव में सदुपयोग होता है, यह अनुसंधान का विषय का है।

किसान खेत में इस आशा के साथ बीज वोता है कि एक-एक बीज के अंकुरण से अन्न के अनेक दाने उत्पन्न होंगे। भूमि में अन्न-वपन भूमि को अन्नदान ही कहा है। मानव समाजरूपी भूमि में दान किया गया धन भी बहु उत्पादक होना चाहिये। वह दान नहीं अपव्यय है, जिससे समाज में शुभ एवं श्रेष्ठता का उत्पादन और सृजन न हो।

सच्चा दान वही है, जिससे मानव समाज में "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" की स्थापना हो, जिससे जीवनतत्व तथा सदाचार का प्रसार हो, व्यक्ति परिवार, समाज, राष्ट्र और संसार की आवश्यकताओं की पूर्ति हो।

दान-पात्र :—

ये वृक्णासी अधि क्षमि निमितासो यत स्रुचः ।
ते नौ व्यन्तुवीर्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः । ऋ. ३. ८. ७

ऋग्देव के इस मन्त्र में यह वताया गया है कि दान के पात्र कैसे व्यक्ति और संस्थायें हों। मन्त्र में श्रेष्ठ दान की परिभाषा दी गई है। देवों को दिया गया दान ही श्रेष्ठ दान है, असुरों को दिया हुआ नहीं।

दिव्य गुणों से युक्त व्यक्तियों को देव कहते हैं। वानप्रस्थी और सन्यासी लोक कल्याण में सर्वदा रत रहते हैं उन्हें दिया गया दान श्रेष्ठ दान है, क्योंकि वे स्वयं अर्थोपार्जन नहीं करते दाताओं के दान से ही उनका कार्य चलता है। देवों को प्रदत्त धन न तो भोग-विलास में व्यय होता है और न ही बैंक में जमा किया जाता है, न भूमि में दवा कर उसका चलन अवरुद्ध किया जाता है। अर्थ और भौतिक भोग़ों के प्रति अनासक्त व्यक्तियों को भेंट किया गया धन लोकसेवा, परोपकार और धर्म में लगता है।

जो ज्ञान की खोज और विज्ञान के आविष्कार में लगे हुए हैं, ऐसे जन मिताहार, मितव्यय तथा सर्वांगीण मिताचार के साथ अपनी साधना में निमग्न रहते हैं, वे निमित्त हैं।

क्षेत्रसाधन का अर्थ है क्षेत्र-साधक। क्षेत्र अनेक हैं और उनकी साधना पद्धतियां भी विभिन्न हैं। विद्या, धर्म-विचार, सदाचार-संस्थापन, राष्ट्र-निर्माण, स्वास्थ्य—संपादन, वेदानुवाद और वेद-प्रचार के अनेक क्षेत्र हैं जिनमें व्यापक साधना की आवश्यकता है। किसी विशेष क्षेत्र में साधना करके अभाव विशेष या न्यूनता विशेष की पूर्ति करना क्षेत्र-साधना है और इसके साधक का नाम है—क्षेत्रसाधक।

कोई साधक मानवों को चरित्रवान् बनाने में जुटा हुआ है कोई साधक नास्तिक और अधार्मिक संसार को वैदिक शिक्षाओं का प्रसार करने में संलग्न है, कोई साधक अन्न वृद्धि और गोवंश वृद्धि की साधना में मग्न है, कोई लोक-सुविधा के लिये वैज्ञानिक आविष्कार करने में। ये सब क्षेत्र-साधक हैं। ऐसे क्षेत्र-साधकों को दिया गया दान श्रेष्ठ दान है। जो इस प्रकार के एक या अनेक क्षेत्र में साधना कर रहे हैं, हमारा धन उन्हें अर्पित किया जाना चाहिये, ऐसा धन साधना में सुहृत् होता है।

इस विशाल भूमि पर देवों में अनेक देव हैं, जो अनासक्त, निमित्त यतसुच और क्षेत्र-साधक है। केवल उन जैसों को हमारा विशुद्ध धन समर्पित होना चाहिये।

हमारे महान ग्रंथ गीता में सात्विक दान की सम्यक् व्याख्या की गई है।

दातव्यमिति यद्यानम् दीयतेऽनुपकारिणे।
देश काले च पात्रे च तद्यानम् सात्विकम् स्मृतम् ॥

अर्थ : देना उचित है ऐसा समझ कर बदला मिलने की आशा के विना देश, काल और पात्र को देख कर जो दान दिया जाता है, वह सात्विक दान कहा जाता है।

सन्त तुलसीदासजी की अमर कृति रामचरित मानस में कलियुग में धर्म का प्रधान माध्यम दान को ही माना गया है :—

प्रगट चारि पद धर्म के कलिमहे एक प्रधान।
जैन केन विधि दीन्हें दान करई कल्याण ॥

धर्म के मान्य चार चरणों में कलियुग में दान ही प्रधान है। सुपात्र को किसी भी तरह से दिया गया दान, दाता का कल्याण ही करता है।

इस विषय में दिनकरजी कविता का निम्न अंश भी द्रष्टव्य है :—

दान जगत का प्रकृत धर्म है, मनुष्य व्यर्थ डरता है
एक रोज तो हमें स्वयं सब कुछ देना पड़ता है
बचते वही समय पर जो, सर्वस्व दान करते हैं।
ऋतु का ज्ञान नहीं जिनको, वे देकर भी मरते हैं

शिकागो के विश्व-धर्म सम्मेलन में भारत का मस्तक ऊँचा करने वाले स्वामी विवेकानन्द ने दान की जो व्यवस्था की है, वह मननीय है।

मानव का जन्म दान के लिये हुआ है—प्रतिदिन की आशा से किए जाने वाले दान के लिये नहीं। प्राप्त वस्तुओं के प्रति अत्यधिक आसक्ति बन्धन का कारण है। मृत्यु हमें हर वस्तु के स्वामित्व से मुक्त कर देती है। प्रकृति और कर्मचक्र के नियमों के अनुसार हर दान का सुफल अवश्य प्राप्त होता है, किन्तु हमें फल-प्राप्ति का लक्ष्य रख कर दान नहीं करना चाहिये, वरन मानव के प्रति करुणा और कर्त्तव्य समझ कर दान करना

चाहिये । प्रकृति में दान और प्रति दान का क्रम अनवरत चलता रहता है। सूर्य समुद्र से जल खींच कर वर्षा के रूप में उसे पृथ्वी पर बरसा देता है और वह पुनः नदियों के माध्यम से समुद्र में ही पहुंच जाता है। खुले कमरे में बाहर की शुद्ध हवा आती रहने से कमरे की अशुद्ध हवा बाहर निकलती रहती है। यदि हम कमरे की खिड़कियां और दरवाजे बन्द करके रखें तो कमरे में अशुद्ध हवा बढ़ेगी और उसमें हमारा रहना दूभर हो जायेगा। हम जितना दान करते हैं, उससे हजार गुणा हमें प्रकृति लौटा देती है, किन्तु इसके लिये हमें धैर्य रखना पड़ेगा, अपने को शक्तिशाली बनाना होगा। जीवन रूपी वन में विभिन्न विघ्न बाधाओं से विचलित न होते हुए अपनी मानसिक दृढ़ता बनाए रख कर हमें कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ रहना चाहिये।

प्राचीन भारत में बड़े-बड़े यज्ञ होते थे और राजागण ब्राह्मणों को सोने से सींग मढ़ी गौएं, स्वर्ण-मुद्रायें, अन्न, दास-दासियां तथा अन्य अभीष्ट वस्तुएं यथेष्ट परिणाम में देते थे।

महाभारत काल में कर्ण की दानवीर के रूप में विशेष ख्याति थी।

एक समय राजा युधिष्ठिर के दरबार में श्री भीम तथा अर्जुन बारबार कह रहे थे : महाराज युधिष्ठिर के यहाँ कोई भी याचक आ जाय उसकी पूर्ति किये बिना, महाराज युधिष्ठिर लौटने नहीं देते। भगवान कृष्ण को बराबर अभिमान से बैर रहा है। उन्होंने सोचा कभी प्रत्यक्ष अर्जुन को दिखाना चाहिये।

कुछ दिन चले जाने के बाद एक समय इतनी घोर वर्षा हुई, लगातार कई दिनों तक वर्षा होती रही। सारा संसार जलमग्न हो गया। कोई भी ऐसी वस्तु न रही, जो सूखी कही जा सके। ऐसे मौके पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा : अपने साधु के वेष बना कर कुछ कौतुक करेंगे। अर्जुन तो हमेशा बिना कुछ पूछे ही कृष्ण के साथ हो जाते थे। दोनों ही साधु का वेष बनाकर महाराज युधिष्ठिर के यहाँ गये और याचना की, 'हमने सुना है आप बहुत बड़े दानी हैं—हमें हमारी मनचाही चीज देने की कृपा करें।'

युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की : महाराज आपका सेवक आपकी मनचाही याचना पूरी करने को तैयार हैं, आज्ञा कीजिये।

साधु वेषधारी श्रीकृष्ण ने कहा : हमें १०० मन सूखा चन्दन का काठ चाहिये, होना चाहिये बिलकुल सूखा।

महाराज युधिष्ठिर ने अपने राज्य के अनुचरों को आज्ञा दी। जल्दी १०० मन सूखा चन्दन का काठ लाओ। राज्य के अनुचर सारी जगह

तलाश कर हताश हो वापस आये। महाराज से निवेदन किया, महाराज सूखा चन्दन का काठ तो कहीं नहीं मिलता सारी जगह अति वृष्टि होने से सूखा चन्दन का काठ नहीं मिला।

दुबारा फिर तलाश का हुकुम हुआ। फिर वही बात वापस आकर कही गई। महाराज युधिष्ठिर लाचार हो गये, क्षमा मांगी और प्रार्थना की, और चीज चाहिये तो आज्ञा दीजिये।

साधु वेषधारी श्रीकृष्ण ने कहा: कोई बात नहीं हमें तो चन्दन का ही काठ चाहिये, हमें मिल जायेगा दानी कर्ण के यहाँ जाना पड़ेगा। जवाब मिला, 'वह कहां से देंगे ?' उत्तर मिला: हमारा ध्येय तो पूरा होगा चाहे जहाँ से मिले।

तत्पश्चात् महाराज कर्ण के पास जाकर वही याचना की। उन्होंने सारी जगह अपने आदमियों के द्वारा तलाश की। बाकी उनका भी जवाब नकारत्मक था !

जब दानी कर्ण ने देखा, कहीं नहीं मिलता तो अपने अनुचरों से पूछा: अपने महल में चन्दन का काठ लगा है न, जवाब मिला बहुत—तो हुकुम हुआ: 'महल को तोड़ो और साधु महाराज को जितना दे सको दो।' महल तोड़ा गया और मन वांछित काठ मिलने से गाड़ी पर लदा कर ले चले और महाराज युधिष्ठिर के महल के नीचे से गुजर कर जा रहे थे।

महाराज को सूचना मिली। साधु महात्माओं को सूखा काठ मिल गया अपने विशेष प्रतिनिधि को भेज कर अनुनय-विनय के साथ दोनों साधु-महात्माओं को महल में बुलाया और प्रार्थना के शब्दों में निवेदन किया: 'महाराज यह सूखा काठ कहां से प्राप्त हुआ ?'

साधु वेषधारी कृष्ण ने कहा, राजन्, कर्ण ने अपने महल को तुड़वा कर सूखा चन्दन का काठ हमें देने की कृपा की। तब युधिष्ठिर ने पश्चाताप करते हुए कहा: 'मैं भी महल को तुड़वा कर दे सकता था। पर उस समय मेरे ध्यान यह बात नहीं आई।'

तब अर्जुन को लक्ष कर भगवान कृष्ण ने कहा: अर्जुन, देखा, दान कैसे दिया जाता है—वही दान कहा जायेगा जो सब कुछ दान के लिये निछावर कर दे। अर्जुन ने उस दिन के वार्तालाप को ध्यान में रख कर क्षमा याचना की। कहा महाराज आपने मुझे सावधान कर दिया। आगे से अहंकार की बात नहीं सोचनी चाहिये।

सिविक सर्विस न्यूज बुलेटिन ३० अक्टूबर १९७७

स्वास्थ्य ही जीवन है

पाठकों, मैं अपने पिछले ७३ वर्ष के गम्भीर अनुभवों के आधार पर ही आज यहाँ स्वास्थ्य की सुरक्षा की बावत कुछ लिखने का साहस कर रहा हूं। साथ ही मेरा विश्वास है कि, सभी के इस सम्बन्ध में अपने निजी अनुभव भी हैं।

इस युग में जिस तेजीसे चिकित्सकों और उनके प्रतिभा-प्रयास से नयी-नयी ईजादों से नयी-नयी दवाओं की बाढ़ आयी है, उसे लक्ष्य करने के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि, इन दोनों प्रकार की बाढ़ों से भी अधिक बाढ़ आयी है रोगों, रोगों के नामों, नाना परेशानियों और जीवन के प्रति निराशा के भावों में। सचमुच हमारा आजका जीवन अत्यन्त संशयशील हो उठा है।

अतएव साफ जाहिर है कि, चिकित्सक (डाक्टर बैद-हकीमादि) और उनकी दवाइयाँ किसी भी बीमारी का सही इलाज नहीं हैं। अगर इनसे कोई रोग हटा भी, तो तुरन्त ही या कुछ आगे-पीछे कोई नया मर्ज मरीज को धर-दबोचता है। तब चिन्ता होती है, निरोग होनेके लिए सही उपाय ढूंढ़ने की। प्रत्येक स्वास्थ्यचिन्तक इसी खोजमें व्यस्त हैं।

किन्तु, हम अनुभव से देखते हैं कि, अगर मनको संतुलित रखा जाय, धीरज से काम लिया जाय और प्रकृतिके अनुशासन में रहा जाय, तो सुख-सुविधा, शान्ति और पूर्ण उन्नति की राह सहज ही मिल जाय।

दैहिक हो या मानसिक—दोनों प्रकार की—निरोगता प्रकृति के ठीक-ठीक अनुशासन में रहने से ही प्राप्त होती है। आज हम प्रकृति को अमान्य करके सामाजिक, आर्थिक और दैहिक स्वास्थ्य-लाभका झूठा विश्वास पोषण कर रहे हैं। हम जीवन की प्रत्येक दिशा में उन्नति के लिए उतावले हुए हैं। हम भूले जा रहे कि, संसार हमें गिराना चाहता है। वह हमें कमज़ोर बनाये रख कर ही अपना स्वार्थ साध सकता है। इसीलिए, वह प्रलोभनों की ऐसी भूमिका रचता है, जिसमें हम सहज ही फँस जाते हैं। ऐसा वातावरण हमें प्रकृतिके अनुशासन से बाहर खींच लेता है। हम बहक जाते हैं और तन-मन दोनों को बर्बाद करके दुर्भोग भोगने को विवश होते हैं।

मनुष्य हो या जाति कमजोर होने पर ही वह दूसरों का शिकार बन जाती है। दुनियाँ तब जैसे चाहती है, उसे नचाती है। वह दुःख भोगता है, रोता है; किन्तु अपने निस्तार के लिए न साहस पाता है, न उपाय। स्वास्थ्य की दयनीय दशा का ऐसा ही परिणाम होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा का यह महत्वपूर्ण साधारण परिचय है। इसीलिए प्रकृति की महिमा भुलाना ठीक नहीं।

प्रकृति के मूल सिद्धान्तों और आदेशों के प्रति जिनका ध्यान है, वे वहुत ही कम रोग-ग्रस्त होते हैं। रोग तो उन्हें धर दवाता है, जो प्रकृति को अमान्य करते हैं। जिनके पास अपार धन है, वे सर-दर्द होते ही कोई बड़ा डाक्टर खोजने लगते हैं और डाक्टर इस तरह के अति साधारण रोग के सहारे उस धनी घर में प्रविष्ट होकर उनके धन और स्वास्थ्य का श्राद्ध करने का पूरा मौका पा जाता है।

अतएव, स्वस्थ रहने, कर्मी बनने के लिए ही मैं अपना अनुभव जाहिर करता हूं। मेरा तजुर्बा है कि, रोजाना व्यायाम करने से, इतना व्यायाम करने से कि, देह सहन कर ले, तन्दुरुस्त रहा जा सकता है। यह स्वस्थ रहने की पहली शर्त है। दूसरी शर्त है, सरलता से हजम होनेवाला सीधा-सादा भोजन। तीसरी शर्त है, भरपूर नींद। अर्थात् व्यायाम, खान-पान और नींद की पूरी-पूरी सही आदत बन जाय, तो स्वस्थ रहना आसान हो जाय।

इसीलिए सूर्योदय से पहले विस्तरा छोड़ना और शौच-स्नानादि नित्यकर्म नियम से नियत समय पर प्रतिदिन पूरा करना अत्यन्त आवश्यक और लाभकारी है। यह भी स्मरण रहे कि, व्यायाम के समय नाक-कान और आँखें साफ कपड़े से ठीक-ठीक साफ कर लें, ताकि रोज-रोज का मैल साफ हो जाय। यदि इस तरह अंग-प्रत्यंग सदा साफ रहे, तो जुकाम आदि विकार हो ही नहीं।

नियमित शारीरिक मेहनत की अत्यन्त जरूरत है। मेहनत की बदौलत ही हमारे मजदूर और किसान बन्धु सदा स्वस्थ रहते हैं—वे जरा-जरा में रोग-ग्रस्त नहीं होते। अतएव, यह निर्विवाद सिद्ध है कि, सदा सुखी, कर्मी और दीर्घजीवी होने के लिए हमें प्रकृति के अनुशासन में ऊपर के कतिपय नियम पालन करना ही चाहिए। जीवन और समाज की श्रृंखला, सुख-शान्ति, मनुष्यत्व का विकास और जीवन की पूर्णता प्रकृति के अनुशासन में ही संभव है। प्रेरणा, उत्साह और प्रगति की यही कुंजी है।

इसीलिए आवश्यक है कि, हम प्रकृति का अनुसरण करें और जीवन को सुखी बनायें। स्वास्थ्य ही हमारा मनोरथ सिद्ध कर सकता है। इसीके लिए हमें प्राकृतिक नियमों का ठीक-ठीक पालन करना है। मनुष्य होकर यदि आप प्रकृति की उपेक्षा करेंगे, तो निश्चय ही वह असन्तुष्ट होगी और कठोर दण्ड देगी। उसके दण्ड के अनेक रूप हैं, जिन्हें दैहिक और मानसिक रोग कहा जाता है। आश्चर्य तो यह है कि, प्रकृति की अनन्त सृष्टि में मानव ही

सर्वश्रेष्ठ है। वह इसलिए श्रेष्ठ कि, उसमें विवेक है। विवेक के कारण ही वह अनन्त सृष्टि से नैमित्तिक ज्ञान संग्रह करके धन्य है। दुःख है, इस समय उसका यह चेतन मन अवचेतन हो रहा है, अन्यथा प्रकृति के अनुशासन में रहने वाले पशु-पक्षियों से वह बहुत कुछ सीखता। एक उदाहरण देखिए। पक्षी से आप परिचित ही हैं। वह भूख लगने पर ही अहार करता है, समय पर ही नींद लेता है और गजरदम उठाता है, चहचहाता है, मानों प्रकृति की वन्दना करता है। फिर, शाम को दिनभर के अपनी रोजी कर्मसे छुट्टी पाकर घोंसले को लौटता है। फ़िर चहचहा कर प्रकृति की स्तुति करके सुख की नींद सो जाता है। मैं पाठकों से निवेदन करूँगा कि, प्रकृति के शासन में रहने वाले पक्षी के ज्ञान की महिमा समझें और रहस्य का उद्घाटन करें। पक्षी कब कहाँ प्राण त्यागता है—यह रहस्य न गाँव वाले जानते हैं, न नगर के सभ्य। किन्तु, समय पर जीवन-लीला समाप्त वे करते ही हैं। स्वेच्छा से प्राण-विसर्जन का वे स्थान चुनते हैं। यह स्थान, वे कैसे चुनते हैं और कैसे अन्त समय में गाँव-नगर से कहीं दूर अदृश्य हो जाते हैं ?

बात आश्चर्य की ही है। किन्तु, ध्यान देते ही आप रहस्य समझ जायेंगे : असल बात यह है कि, तमाम जीवन बिताने के सत-संकल्प से उन्हें अपने अन्त का यथार्थ बोध हो जाता है और यह बोध उन्हें मृत्यु के इच्छित स्थान-चयन का स्पष्ट संकेत देता है। यदि ज्ञानवान मनुष्य प्रकृति को मान्यता दे, विश्वास और श्रद्धा से उसके अनुशासन में रहे तो उसे भी पक्षियों की तरह ही अपने अन्त का सही पता लग जाय।

ऐसे अनेक उदाहरण प्रकृति की अनन्त-सृष्टि से उपस्थित करके मानव-मनको उसकी महिमा और शक्ति का परिचय देकर प्रकृति के मूक संकेतों के पालन करने की अनिवार्यता दिखायी जा सकती है। मनुष्य को लज्जित होना चाहिए कि, प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ और प्रिय सन्तान होकर भी वह पशु-पक्षियों से भी कहीं अधिक गया-गुजरा बना जा रहा है।

'आरोग्य'—दिसम्बर १९७७

पौराणिक कथा

मृत्यु का रहस्य

शुद्ध धार्मिक वृत्ति के एक ब्राह्मण, किसी से याचना नहीं करते हुए, गांव के वाहर एक छोटी-सी कुटिया में रहते थे। उनकी पत्नी, एक लड़का, लड़के की वहू, छोटा-सा यह उनका परिवार था। सभी वड़े शुद्ध विचार के, सच्चरित्र तथा ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखने वाले थे। सुवह तीन वजे उठकर, हाथ-मुँह धोकर, भगवान का भजन-स्मरण करने बैठ जाते थे। अपनी मेहनत से जो मिल जाता, उसीमें उन्हें सन्तोप था।

प्रतिदिन की तरह उस दिन सुवह तीन वजे उठे, हाथ-मुँह धोकर जैसे ही हरि स्मरण में बैठे ऊपर को मुँह किया तो झोंपड़ी में एक रस्सी लटक रही थी वह नीचे गिरी और साँप बन गई। साँप वनकर उसने उनकी स्त्री को, लड़के को, लड़के की वहू को डस लिया। ब्राह्मण देवता वहुत ही आश्चर्यचकित देखते रहे कि यह कैसे घटा। कुछ ही समय में देखा कि सर्प वाहर निकला और रास्ते पर चलने लगा। पंडित जी भी उसके पीछे हो लिये। साँप ने राजा की घुड़साल और गौशाला में जाकर कुछ घोड़ों और गायों को डसा, वे गिर गए। उसके वाद वही सर्प वाहर निकला और थोड़ी दूर जाकर एक सांड वन गया। २५-३० वर्ष का एक युवक उधर से चला आ रहा था, सांड ने उस युवक को सींगों पर रख कर पटक मारा और वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। उसके वाद सांड के रूप में वह मृत्यु जंगल की तरफ जाने लगी। ब्राह्मण चकित-से स्व-नेत्रों से सब वातों को, सारे नाटक को देखते हुए उसके पीछे-पीछे बढ़ते जा रहे थे। वे इस आश्चर्यमय घटना को देखते हुए हैरान थे। थोड़ी दूर जाने पर वही सांड एक नवोढ़ा स्त्री के रूप में परिवर्तित हो गया। गांव के वाहर जंगल की तरफ जाने पर दो जवान राजपूत सामने से आ रहे थे। वह स्त्रीरूपी मृत्यु एक किनारे बैठकर रोने लगी। सौन्दर्य की उस प्रतिमा को देख कर दोनों जवान ठिठक गए।

पूछा—"आप क्यों रो रही हैं ?"

उसने सुवकते हुए कहा—"मेरे ससुराल वाले मुझे पीहर से ला रहे थे। रास्ते में डाकुओं ने उन्हें मारकर मुझे छीन लिया। मैं किसी तरह उनसे छुटकारा पाकर आई हूं। अब आप मुझे अपने साथ रखकर काम देंगे तो मेरा वड़ा उपकार होगा।"

वे राजपूत शक्तिशाली और बलवान थे। उन्होंने कहा, "हमारे साथ चलो, हम देखेंगे।" वे दोनों अविवाहित थे।

उस स्त्री ने कहा, "मेरे को तो कोई रखने वाला नहीं है, आप ही मुझको रखिये।'

दोनों ने परस्पर विचार किया।

बड़े भाई ने कहा, "अच्छी बात है। मैं इससे विवाह करूँगा।"

कुछ दूर चलने के बाद उस नवागन्तुक स्त्री ने कहा—"मुझे बड़ी प्यास लगी है।"

छोटे भाई ने कहा, "मैं पानी लाता हूं, आप यहाँ ठहरिये।"

बड़े भाई ने कहा, "अब इससे मेरी मंगनी हो गई है, पानी मुझे ही लाने दो। तुम इसकी रखवाली करो, मैं जाकर पानी लाता हूँ।"

छोटे भाई ने उसकी बात स्वीकार की। जब बड़ा भाई पानी लाने गया तो पीछे से उस स्त्री ने छोटे भाई से कहा—"मैं तो आपसे शादी करूँगी।"

छोटे भाई ने कहा—"आप तो मेरी माता-स्वरूपा हैं, जब एक बात हमारे राजपूतों में तय हो जाती है तो उसको बदला नहीं जाता। बड़े भाई की आपसे मंगनी हो गई है, अतः आप मेरी माता के स्वरूप हैं।"

उतने में बड़ा भाई पानी लेकर आया।

उस स्त्री ने कहा, "आपके छोटे भाई ने मुझसे अनुचित बात की है।"

इतना सुनते ही राजपूत स्वभाव के अनुसार बड़े भाई ने तलवार निकाली और छोटे भाई को ललकारा—"तुम इतने नालायक हो, मेरी मंगनी होने के बाद इससे तुमने अनुचित बात की ?"

छोटे भाई ने हाथ जोड़कर याचना की, "भाई साहब, मेरी बात तो सुनिये।"

लेकिन राजपूत को जब जोश आता है, तो वह किसी की नहीं सुनता। छोटे भाई ने भी तलवार निकाली और वहीं आपस में मरकर दोनों ढेर हो गये। उस स्त्री का तो यही लक्ष्य था। उसने आगे जंगल की तरफ चलना शुरू किया। ब्राह्मण देवता अब तक चुपचाप यह सारा नाटक अवलोकन कर रहे थे। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। उन्होंने दौड़कर उसके पैर पकड़ लिये और पूछा, 'माता-स्वरूपा, हे विधाता आप कौन हो ?"

उसने कहा, "मैं विधाता ही हूं। मुझे और कुछ नहीं कहना है।"

ब्राह्मण ने फिर विनम्रता से निवेदन किया, "मेरा तो घर आपने बरबाद कर दिया ?"

विधाता ने कहा, "ब्राह्मण देवता मुझे कुछ नहीं कहना है। ये जो सामने दो युवक मरे पड़े हैं। बस, मुझको इतना ही मालूम है।"

तब ब्राह्मण देवता ने फिर हाथ जोड़कर विनती की, "हे शक्तिशालिनी मृत्यु स्वरूपा, भवानी ! मुझे बताओ, मैं क्या करूँ ? मेरी मृत्यु कब होगी ? कैसे होगी ? कहाँ पर होगी ?"

उसने कहा—"तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। जो जन्मा है वह मरेगा ही। लेकिन कब, कहाँ—यह मैं नहीं बता सकती। मैं इतना ही तुमको कह सकती हूं कि तुम सच्चरित्र हो, बुद्धिमान हो। हां, तुम्हारी मृत्यु पानी में मगरमच्छ के द्वारा होगी।" और वह अन्तर्धान हो गई।

ब्राह्मण देवता बहुत सोच में पड़ा। रोता पीटता अपने घर आया। अपने परिवार वालों की क्रियाकर्म की। अंतिम सारा काम करके वह सोचने लगा कि मेरी मृत्यु का कारण निश्चित है, क्योंकि इस रूप में मैंने उसे बहुरूपों में कार्य करते देखा। उसकी बात गलत नहीं हो सकती। 'जब तक सांस तब तक आस' अंतिम क्षण तक प्रयत्न तो मनुष्य को करना ही चाहिए। यह विचार कर वह ऐसी जगह रहने की सोचने लगा, जहां पानी का नामोनिशान भी न हो। बिना बहुतायत पानी के मगरमच्छ कहां से पैदा होगा ? ऐसी जगह के लिए सोचते-२ उसको ध्यान में आया कि रेगिस्तान में जा बीकानेर में रहना चाहिए और वहां चला गया। वहां जाने पर उसकी तपस्या के फलस्वरूप तथा सचरित्रता, सद्भावना, सत्यवादिता के ऊँचे आचार व्यवहार के कारण थोड़े दिनों में ही राजगुरु हो गए। राजगुरु के तौर पर उसका प्रभाव बढ़ने लगा। कुछ दिन बाद महाकुम्भ का पर्व आया। राजा ने वहां जाने का निश्चय किया राजगुरु को बुलाहट हुई। "महाराज ! आप सब तैयारी कीजिए, अपने को महाकुम्भ पर जा कर स्नान करना है।" ब्राह्मण देवता बहुत पशोपेश में पड़ गए। प्रार्थना की "महाराज, मुझे वहां जाना वाञ्छित नहीं है।"

राजा ने कहा—"महाराज ! आप राजगुरु हैं, राजाज्ञा की अवहेलना नहीं की जाती।"

लेकिन पंडितजी महाराज ने जब आग्रह से कहा—"मुझको जाना उचित नहीं है।"

राजा ने जोर देकर कहा—"राजा की आज्ञा की अवमानना करना किसी के हक में ठीक नहीं होता। फिर आप तो राजगुरु हैं। आज्ञा नहीं मानने की सजा है प्राणदण्ड। इसलिए आप पर्व में जाने के लिए मना न करें। आप बतायें कि आप आखिर वहां क्यों नहीं जाना चाहते।"

पंडितजी ने विनम्रता से बताया—"पानी में मगरमच्छ द्वारा मृत्यु होना मेरे भाग्य में लिखा है और उन्होंने जो देखा था, सारा घटना क्रम से बताई और पूछा—"आप बताइये मैं क्या करूँ ?"

राजा ने कहा, मैं तीस हाथ ऊंचा मचान बनवा दूंगा, चारों तरफ फौज रहेगी, वहां एक फुट पानी में चौकी पर मैं खड़ा रहूंगा, आप तीस फुट ऊंचे मचान पर बैठे श्लोक उच्चारण करेंगे और मैं संकल्प लूंगा। बताइये—मगरमच्छ आपके पास कहां से आयगा ?"

यह बात सुनकर पंडितजी को कुछ सांत्वना मिली—एक फुट पानी में चौकी डालकर राजा खड़ा होगा, चारो तरफ बहुत फौज होगी और तीस हाथ ऊंचे से मैं श्लोक बोलूंगा, मगरमच्छ चिड़िया तो हो नहीं सकता, जो उड़कर आ जायेगा।"

समय पर, सभी के साथ पंडित जी भी पर्व पर पहुंचे। राजा के द्वारा पूरा प्रबन्ध हो गया था। लाखों आदमी वहां उपस्थित थे। इतना कोलाहल कि पंडितजी द्वारा उच्चारित श्लोक कोलाहलपूर्ण वातावरण के कारण राजा को सुनाई ही नहीं पड़ते थे।

राजा ने प्रार्थना की—महाराज, आप जो श्लोक बोलते हैं, इस कोलाहल में कुछ सुनाई नहीं पड़ते। मेरे दान देने के बारे में सुनाई न देने से, मैं क्या करूं ? इसलिये आप नीचे आ जाइये, पास में खड़े होकर श्लोक बोलिये और मैं संकल्प लेता हूं।"

अब कोई चारा नहीं था, समय की विवशता देख पंडितजी नीचे आकर एक चौकी पर खड़े हो गये। राजा सामने खड़ा संकल्प ले रहा था। इतने में पंडित जी की मृत्यु का समय आया, राजा ही मगरमच्छ बना और पंडित जी को लेकर कहां लुप्त हो गया, कोई देख नहीं पाया। राजा की सारी प्रजा, फौज के सैकड़ों जवान राजा की खोज करते रहे। बेचारे पंडित जी की तरफ कौन ध्यान देता।

जब मृत्यु आती है, अपना नाम नहीं करती। कोई बीमारी, कोई दुर्घटना, कोई महामारी, लेकिन मृत्यु अपना नाम नहीं बताती। आदमी जब पैदा होता है तो उसकी मृत्यु भी निश्चित होती है। मृत्यु का यह रहस्य मनुष्य को आस्थावादी व ईश्वरवादी बनाने में बहुत सहायक है। मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का रूप यही हो सकता है कि व्यक्ति शांतिपूर्वक सदाचारी जीवन जीये। मृत्यु से भागे नहीं, घबराये नहीं, अपितु कर्तव्य एवं बुद्धिमता से इस अनिवार्य धर्म का सहर्ष सामना करे।

कथालोक, मार्च, १९७८

औलिया (साधु) तथा लोहार की कथा

बड़े शहर में एक साहूकार बहुत बड़े मकान में रहता था उसके दरवाजे पर बन्दूक धारी हर समय पहरा देते थे : सामने बहुत-सी जमीन खाली पड़ी थी। उसमें एक बहुत गरीब लोहार वास करता था। वह लोहार बहुत ही सच्चा ईश्वर और साधु-सन्त-भक्त था। उसकी आय बहुत ही कम होने के कारण पूरा पेट ही नहीं भरता था लेकिन वह हमेशा प्रसन्न रहता था। जो भी मजूरी करके आय होती थी उसी में वह ईश्वर का प्रसाद मानकर सन्तोष कर लेता था। उसे किसी बात की चिन्ता होती ही नहीं थी।

एक दिन संयोग से एक औलिया साधु घूमते-फिरते उस शहर में आया। ऐसे साधु देखने में बहुत ही गन्दे-से लगते हैं बाकी भीतर से ईश्वर के प्रति पूरी चेतनता रहने के कारण कोई बाहर में माँग नहीं होती। न तो उनका कोई निजी स्थान होता है, न तो कोई ठहरने की जगह। उनका काम केवल घूमते रहना, जहाँ कुछ मिल गया, खा लिया, जहाँ जगह मिल गयी, सो गये। फटेहाल रहने के कारण कपड़े भी फटे हुए, न पहनने का सहूर, देखने वालों को बिलकुल घृणा होती थी।

वह साधु एक रोज उस मकान के सामने आ उपस्थित हुआ। रात का समय था। करीब ९-१० बजे होंगे। दरवाजे पर संतरी पहरा दे रहा था। उससे बड़े नम्र शब्दों में कहा—मुझे आपके गेट के पास में ही कुछ जगह दे दो तो सो जाऊँ, सुबह ४ बजे ही उठकर चला जाऊँगा। कारण वह जगह जरा साफ सुथरी थी, पक्की भी थी। उस मकान का दरवान उसे देखते ही झल्ला उठा, हटो आया बड़ा सोने वाला, गन्दा आदमी ! अभी कहीं सेठ साहब आ जायेंगे तो मुझे डाँटेंगे। हटो दरवाजे के पास से। इतने में ही बड़ी मोटर में सेठ साहब आ गये। दरवान को उस औलिया साधु से बात करते देखा, पूछा दरवान क्या बात है ? दरवान ने सब बातें बतायी जो साधु चाहता था। सेठ साहब बहुत गुस्सा करते हुए बोले—दरवान हटाओ इस गन्दे आदमी को, सारा रास्ता ही गन्दा कर दिया है और यह भी कहा—जल्दी हटाओ। यह साधु के वेश में पहुंचे हुए महात्मा ने जब देखा कि सेठ साहब बहुत गरम हो गये हैं तो वह सामने लोहार की कुटिया की तरफ गये। लोहार की कुटिया में तो कुछ रखा ही नहीं था दरवाजा भी कहाँ से आता ? लोहार साधु महाराज को देखते ही दौड़कर दंडवत् प्रणाम किया। गदगद होते हुए बोला—अहोभाग्य है आज मेरा जो

मेरे गरीव के घर अतिथि के रूप में साधु महाराज पधारे। साधु रूपी औलिया देवताने कहा—वावा मुझे कुछ नहीं चाहिए मैं तो केवल ५-६ घंटे सोकर सुवह से पहले ही चला जाऊँगा। लोहार ने कहा—महाराज आप तो भगवान् स्वरूप हैं मेरे पास खाना तो कुछ नहीं है, पानी भी फूटे घड़े में रखा हुआ है, वर्तन कुछ है नहीं। टूटे हुए वर्तन में पानी है वह आप ग्रहण करें, साधु रूपी भगवान् ने उसकी ऐसी भक्ति देखी तो थोड़ा जल ग्रहण कर सोने का प्रस्ताव रखा। उस लोहार ने टूटी हुई खाटपर जवरदस्ती उन्हें सुलाया और पास उनका पैर दवाने नीचे वैठ गया। साधु महाराज ने बहुत समझाया पर उसने नहीं माना, रात भर लोहार जागता ही रहा। सुवह साधु महाराज जब जाने लगे तो वह लोहार भी साथ हो लिया। उन्होंने वहुत मना किया, लोहारने वार-वार कहा—महाराज आपने मेरी झोपड़ी में अपना पैर रखा मैं कृतार्थ हो गया। अव आपको विना पहुंचाये कैसे रहूँगा? रास्ते में बार-बार साधु महाराज कहते रहे अब जाओ, किन्तु वह बार-बार यही जवाब देता रहा कुछ देर बाद चला जाऊँगा। अन्त में साधु महाराज ने एकनिष्ठ उसकी भक्ति तथा श्रद्धा देखी तो कहा तुम कुछ मुझ से माँगो, उसने तुरन्त जवाव दिया—महाराज; मेरे पास तो सब कुछ है मैं रोज मेहनत कर जो कुछ उपार्जन कर लेता हूँ मेरा काम चल जाता है। महाराज; आपकी मेरे पर कृपा बनी रहे। मुझे सब कुछ मिल गया। दो तीन बार महाराज ने कहा, लोहार का एक ही जबाब था—आपकी कृपा ही मेरे लिए सब कुछ है। फिर कुछ देर बाद साधु महाराज ने कहा—यह तो मैं समझ गया तुम कुछ नहीं माँगोगे, लेकिन अगर माँगो भी तो क्या माँगो, उसने जवाव में कहा—अगर मैं माँगू तो यह माँगू कि मेरे गाँव का कोई आदमी भूखा न रहे। बहुत समझाने से लोहार वापस लौटा।

इधर जब सुबह हुआ तो सेठ साहब उठे और हाथ मुँह धोकर बरामदे में आये तो क्या देखते हैं—सामने जो जमीन वर्षों से खाली पड़ी थी उसमें इतना बड़ा महल उसकी कोठी से बहुत ऊँचा खड़ा है और उसमें दरवान, नौकर, मोटरें सबका बोलवाला है। सेठने समझा कोई जाला आँखों में आ गया है फिर आँख साफ की, जल छोड़ा, फिर भी वही दृश्य सामने देखा, तो अपनी स्त्री को सोते-से जगाया। उसकी धर्मपत्नी ने कहा—आप अपनी तरफ देखिये, दूसरों की तरफ देखने की क्या जरूरत है? तब नीचे जाकर दरबार से पूछा यह सामने का मकान कल तो नहीं था, रात को कैसे बन गया? दरवान ने जबाव दिया—हुजूर; मैंने भी अभी देखा है। तब सेठने पूछा वह साधु रात को आया था वह क्या सामने लोहार के यहाँ रहा?

इधर तो सेठ के यहाँ यह बात हो रही थी, अब जब लोहार वापस आया तो उसे अपनी झोपड़ी नहीं मिली। उसकी जगह बहुत बड़ा महल खड़ा था। दास-दासी, दरवान, सारे वैभव सामने उपस्थित थे। बेचारा बहुत रोया, इतने में घर से सब निकले उसे हाथों-हाथ उठाकर भीतर ले गये और बोले आप ही तो मालिक हैं—इस महल के। अब उसे बहुत दुःख हुआ। यह भगवान् ने क्या किया? अन्त में उसे भी विश्वास हो गया। यह उसी साधु बाबा का आशीर्वाद है।

इधर सेठ उसके महल के भीतर जाने का विचार कर जैसे दरवाजे में घुसने लगा दरबान ने रोका—आप कौन हैं? बिना सेठ के हुकुम के कैसे भीतर जाते हैं? खड़े रहिये। अपना नाम लिखकर दीजिये। यह बातें हो रही थी कि लोहार को जब पता चला दौड़कर आया—सेठ साहब मुझे बचाइये यह मेरा मकान नहीं है। मेरी झोपड़ी ये लोग तोड़कर मुझे इस मकान का मालिक बताते हैं। मैं गरीब आदमी इतने बड़े मकान को लेकर क्या करूंगा? सेठने उसे धीरज देकर समझाया और पूछा—वह साधु बाबा कहाँ गये? लोहार ने कहा—उसी ने तो सब बखेड़ा कर दिया, मैं उसको कुछ दूर छोड़कर आया हूँ। मुझे क्या पता मेरी झोपड़ी—गरीब आदमी की तोड़कर इस बला में मुझे वह फँसा देगा। सेठ तुरन्त अपनी बड़ी मोटर मँगाकर दौड़ा साधु बाबा के पास। कुछ देर बाद साधु बाबा जाते दिखायी दिये। सेठ मोटर छोड़कर पैदल दौड़कर उसके पैर पर गिर पड़ा, हाथ जोड़कर बोला, महाराज; मुझे क्षमा कीजिये। मुझसे बड़ी भूल हुई। साधु ने जबाब दिया—तुम कौन हो, जाओ यहाँ से हमसे तुम्हारा कोई काम नहीं।

सेठ—महाराज; आप मुझपर दया कीजिये, मैं आपका दास हूँ।

साधु महाराज—हम गन्दे आदमी हैं। हमारे पास खड़े रहनेसे तुम्हें दुर्गन्ध आती है। जाओ भाग जाओ।

सेठ—नहीं महाराज, मेरे घर आपको चलना ही होगा।

साधु—हम किसी के घर-बर नहीं जाते, हम तो रमते राम हैं, जहाँ जगह मिली पड़ रहे, जहाँ मिला खा लिये, जाओ।

सेठ—महाराज, मुझे आपको माफ करना ही होगा। बार-बार हाथ जोड़कर प्रार्थना करता रहा। साधु—बिना बोले आगे बढ़ते गये—दौड़कर फिर साधु महाराजसे प्रार्थना की। फिर भी न माने तो सेठ बोला—महाराज; आपने इतनी सम्पत्ति लोहारको दी मुझे भी कुछ देने की कृपा कीजिये।

तब उस समय कहा—भले आदमी, मेरे पास क्या रखा है ? जो मुझसे माँगते हो, मेरे पास तो कपड़ा भी नहीं है, मेरे पास तो देनेको होता तो मेरा यह हाल कैसे होता ? यह तो अपने-अपने कर्मों का फल है जो जैसा करता है उसे उसी रकम का फल मिलता है। उस आदमीने सुकृत किये हैं उसका फल उसे मिला। तुम भी अच्छे कर्म करो तुम्हें भी अच्छे फल मिलेंगे। इतना कहकर महाराज अपने रास्ते चले गये। सेठ अपना-सा मुँह लेकर वापस आ गया।

इस कथाका सार है आप हमेशा सुकृत कीजिये, ईश्वर आपको भी उसी रकमसे फल देंगे। उस लोहारको कितना कहनेपर भी उसने अपने लिये कुछ नहीं चाहा। फिर जब पूछा अपने लिये न माँगकर अगर माँगो तो क्या माँगो, उसने जवाब दिया—अगर आप ऐसा कहते हैं तो अगर मैं माँगूँ तो अपने गाँवके लोगोंको भरपेट अन्न दो। यह इतनी बड़ी बात है उसीका फल उसे मिला।

राम झरोखे बैठकर सबका मुजरा लेत।
जैसी जिसकी चाकरी वैसा ही फल देत।।

चिन्तामणि, त्रैमासिक, मई १९७९

लोक सत्ता के शाश्वत आधार

मनुष्य जब अपना वास्तविक स्वरूप भूल जाता है तो उसके समस्त मानवीय गुण भी समाप्त हो जाते हैं और बुराइयाँ ही उसकी संगिनी बन जाती हैं। सुप्रसिद्ध सर्वोदयी चिन्तक दादा धर्माधिकारी ने अभी कुछ दिनों पूर्व ही जनता सरकार की कार्य-शैली के बारे में अपने अत्यन्त सारगभित विचार व्यक्त किये थे। उनके अनुसार जिस देश का शासक वर्ग मात्र दूसरों की बुराइयाँ देखने तथा रात-दिन उन्हें नीचा दिखाने में अपनी समस्त बुद्धि-शक्ति को लगा देता है, उसे प्रजा का हित करने का अवसर ही नहीं मिलता है। सरकार का अंतिम तथा सर्वोपरि उद्देश्य प्रजा का कल्याण करना है। उन समस्याओं का सार्थक समाधान निकालना तो दूर, उल्टे शासक दल आपसी कलह एवं परछिद्रान्वेषण में रात-दिन लगा रहता है।

आज सत्ता पाँच दलों के हाथ में है। यदि आपसी सहयोग और समन्वय से उसे संचालित किया जाय तो नये कल्याणकारी सुधार भी सम्भव हैं और पुरानी गलतियों को भी दूर किया जा सकता है। प्रारम्भ में ही श्री जयप्रकाशजी ने अपने विचार रखे थे। लेकिन एक वर्ष वीतते ही उस पथ से हटना शुरू हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि विगत विधान सभाओं के चुनावों में जनता पार्टी को बहुत हानि उठानी पड़ी।

इसी प्रसंग में मुझे सन् १९६२ का वह समय याद आ रहा है, जब पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री डा० विधानचन्द्र राय थे। शासन सुचारु रूप से चल रहा था, लेकिन उनके बाद स्थिति ठीक विपरीत हो गई। कांग्रेस जन अपनी शक्ति तथा मद में चूर हो गये। उन्हें दम्भ था कि वे अपराजेय हैं। सेना और जिलाधिकारियों की रिपोर्ट के अनुसार जनता में असंतोष था। निर्णय प्रत्यक्ष आँख से देखने के बजाय कान से सुनी-सुनाई बातों पर रहते थे और इन सबका परिणाम सन् १९६७ में आया। संयुक्त मोर्चा सरकार सत्ता में आई। कुछ काँग्रेसी भी उसी में आ मिले और एक तो मुख्य मंत्री भी बन गया। मद में वे शायद भूल गए थे कि प्रजातंत्र में आम जनता ही तराजू होती है।

संयुक्त मोर्चा सरकार में भी प्रतिशोध, अशांति, अव्यवस्था, हिंसा, डकैती आदि अराजकता के तत्वों को पूरा बढ़ावा मिला। जो शासन प्रजा-रक्षक होना चाहिए था, वही प्रजा-भक्षक बन गया। सत्ता-मद और शक्ति-अहंकार किसी भी सरकार के लिए वैसा ही होता है. जैसे किसी वृक्ष की जड़ों में दीमक।

अभी हाल ही में उत्तर प्रदेश विधान सभा में जनता के चुने हुये प्रतिनिधियों ने जैसा नग्न-बर्बर प्रदर्शन किया, उससे यही लगता है कि हम समस्त मानवीय गुणों को भूल गये हैं। क्या इतने पर भी हम सभ्य कहलाने के अधिकारी हैं ? हमारी भारतीय संस्कृति और सभ्यता का सुन्दर महल सत्य पर आधारित है। हमारे महान ऋषियों तथा युग-पुरुषों ने कहा है कि असत्य को सत्य से जीतो, क्रोध को क्षमा से जीतो, कपट को निश्छलता से कृपणता को दान से जीतो तथा लोभ को त्याग से जीतो। मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा, ये चार बातें हमें भगवान बुद्ध ने दी है। स्वामी महावीर ने भी लगभग यही संदेश दिया। पूज्य महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा का अमोघ अस्त्र हमें प्रदान किया, जिनके बल पर हमें यह स्वतंत्रता प्राप्त हुई। पर आज ऐसा लग रहा है कि हम अपने स्वरूप को भूल गए हैं और साथ ही बुद्ध, महावीर तथा गांधी को भी भुला बैठे हैं।

इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि क्रोध, मद, अहंकार एवं प्रतिशोध की दुर्भावनाओं से हिरण्यकश्यप, वलि, रावण, सहस्रबाहु, दुर्योधन आदि महान पराक्रमियों के साम्राज्य तिनके की भांति उड़ गये। फिर भी हम जान कर अनजान बन रहे हैं। पता नहीं, यह दुर्भाग्य हमें कहाँ ले जायेगा! जय-पराजय तो धूप-छांव की भांति है। विजय में हमें मदमत्त न होना चाहिए और न पराजय में खिन्न। पारस्परिक द्वेष, हिंसा और प्रतिशोध की दुर्भावनाओं का परित्याग करने पर ही हमें अपने असली स्वरूप के दर्शन होंगे। अथर्ववेद में एक सूत्र है. "प्रजाओं को मंगल देने वाला, उनको अभय बना कर पालन करने वाला, सत्य और करुणा के साथ बढ़ने वाला, हिंसा को वश में करने वाला, संयमी, क्षमाशील नेता ही शासक होने का अधिकारी हैं। राजा ही राष्ट्र-उन्नति का मूल है। वही राष्ट्र को आदर्श स्वरूप देता है।"

रामचरित मानस में भी गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है :

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

"यथा राजा तथा प्रजा" अर्थात जैसा राजा या शासक होगा, प्रजा भी उसी प्रकार की होगी। राजा के सद्‌गुणों के प्रभाव से प्रजा-मण्डल पर मंगल की सुधा बरसती है और उसके दुर्गुणों से अमंगल का वज्रपात होता है। राजा के आचरण पर भीष्म पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर को जो आदेश दिया वह आज भी अनुकरणीय है।

पितामह ने कहा—जब राजा धर्म का आचरण करता है तो समय पर वर्षा होती है और प्रजा धन-धान्य से सम्पन्न होती है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग राजा के आचरण में ही स्थित है। यदि राजा प्रमादो हुआ तो चारों वर्ण, चारों वेद, नष्ट हो जाते हैं और उसके स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धव शोक-ग्रस्त होते हैं। उसकी सभी आश्रित प्रजाएँ, पशु-वाहन दुःख से पीड़ित रहते हैं। विधाता ने निर्बल प्राणियों की रक्षा के लिए ही शक्तिवान राजा की उत्पत्ति की है। राजन्! निर्बल मनुष्य, मुनि और जहरीले सर्प की दृष्टि को मैं दुःसह मानता हूं। अतः निर्बल को कभी भी न सताना। निरपराधी पर अपराध न लगाना। उनके आंसू कुल-परिवार, सम्पत्ति, राष्ट्र-सेना सभी को नष्ट कर देते हैं। जिस प्रकार पृथ्वी पर बोया गया बीज तुरन्त अंकुरित नहीं होता, उसी प्रकार किया गया पाप भी तुरन्त फल नहीं देता। समय आने पर ही फल मिलता है।

जब देश के लोग समूह बनाकर भीख मांगते हैं तो वे एक दिन राजा का विनाश कर डालते हैं। यदि राजा काम या लोभ वश गरीब की याचना को ठुकरा देता है तो उसका विनाश शीघ्र ही हो जाता है। जहां अत्याचारी और पापी स्वेच्छाचार करते हैं, वहीं कलियुग प्रकट होता है। परन्तु अन्याय को नष्ट करने वाले प्रजा-रक्षक राजा के राज्य का सर्वत्र अभ्युदय होता है।

अपने आश्रितों को बांट कर खाना, मंत्रियों का अनादर न करना, अन्यायी का दमन, राष्ट्र की सब प्रकार से रक्षा करना, विद्वानों, संतों का आदर करना, शरणागत और धर्म की रक्षा करना, भृत्यों का पोषण करना, इन्द्रिय संयम रखना, विवेक, क्षमा, करुणा, शील, दान, निग्रह और अनुग्रह भाव को स्वीकारना आदि राजा के गुण हैं। प्रजा पालक के रूप में वह परमेश्वर तथा अन्यायी के दमन में वह साक्षात् यम होता है।

बुद्धिमान, शूरवीर तथा दण्ड न्याय का ज्ञाता राजा ही राज्य का रक्षक होता है। तुम्हें सुन्दर, कुलीन और राज्य-भक्त बहुत मंत्रियों को साथ लेकर तपस्वियों तथा अन्य लोगों की परीक्षा करनी चाहिए। इससे तुम्हें सर्वभूतों का ज्ञान होगा तुम्हारा धर्म कहीं भी किसी काल में नष्ट न होगा। अतिथि, गुरु, आचार्य और विज्ञ जानों के सम्मान, मृदु वचन बोलने तथा करुणाशील बने रहने से श्रीसम्पत्ति बढ़ती है। सभी दिग्पालों ने इन्हीं गुणों का पालन किया।

पितामह ने आगे बताया कि उत्थय मुनि के इन उपदेशों से प्रेरित होकर महाराज मान्धाता ने वैसा ही आचरण किया और वे समस्त पृथ्वी के राजा बने।

इस प्रकार युधिष्ठिर ने शंका प्रस्तुत की, "पितामह ! जो धर्मनिष्ठ राजा अपने धर्म में स्थिर रहना चाहे, उसे कैसा बर्ताव करना चाहिए ?"

पितामह ने कहा, "एक बार राजा वसुमना ने ऐसा ही प्रश्न परम तपस्वी वामदेव से पूछा था और उन्होंने इस प्रकार राजा को उत्तर देते हुये सन्तुष्ट किया—राजन् ! धर्म से बढ़कर और कुछ नहीं है। धर्मी ही श्रीशोभा, ऐश्वर्य, कीर्ति, विभूति और अमरता प्राप्त करता है और अधर्मी राजा प्रजा के कोप का भाजन बनकर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। चारों फलों—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष और बन्धु-बान्धवों से सम्पन्न होने पर भी अपने को कभी पूर्ण न समझे। दुराचारी, स्नेह, करुणा और क्षमाशून्य नरक का भागी होता है।"

राजा को चाहिये कि यदि किसी का अप्रिय किया हो तो उसका प्रिय भी करे। सत्यवादी, विचारवान, स्थित-प्रज्ञ, दूरदर्शी, निर्णयशील,

जितेन्द्रिय बन कर रहे तथा ऐसे ही कर्मचारियों की नियुक्ति करे। इसके विपरीत लम्पट, मद्यपी, परस्त्रीगामी, चोर, लोलुप, दुराचारी, हिंसक और दुष्ट बुद्धि वाले कर्मचारियों की नियुक्ति से राज्य शीघ्र नष्ट हो जाता है।

उत्तम दुर्ग, दक्ष सैनिक, न्याय, सुमंत्री तथा प्रजा मंगल ही राजा की विजय और अक्षुण्णता के पंच अमोघ अस्त्र हैं। राज्य की नींव सुदृढ़ होने पर ही अन्य देशों पर अधिकार की इच्छा करनी चाहिए। विवेकशील राजा को नीर-क्षीर-विवेकी होना चाहिए।

राजा वसुमना और राजा युधिष्ठिर के प्रति महात्मा वामदेव और भीष्म पितामह के ये उपदेश किसी एक काल के नहीं, अपितु शाश्वत सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक हैं।

आज हमारा राष्ट्र विपत्तियों से घिरा है, एक चौराहे पर खड़ा है। उसे अपना स्वरूप पहचान कर अपने भावी चरण बढ़ाने हैं। हम सब क्या आज इस संक्रांति काल में इन शाश्वत संदेशों को हृदय से स्वीकार सकते हैं? सरकार को चाहिए कि महान युग-पुरुषों द्वारा कहे गये इन अमृत वाक्यों का अनुसरण करे तथा लोकमंगल के पावन मार्ग की ओर गतिशील हो, तभी हमारा लोकतंत्र सुदृढ़, सम्पन्न और अक्षुण्ण रहेगा।

जीवन साहित्य : जन १९७८

ऐसी ही शिक्षा व परीक्षा प्रणाली

वर्तमान शिक्षा एवं परीक्षाओं की जो पद्धति हमारे देश में प्रचलित है, उसका जनक लार्ड मैकाले था और उसकी इस प्रणाली का उद्देश्य केवल इतना ही था कि ब्रिटेन को भारत में अपना शासन सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिये क्लर्कों की फौज बनती रहे, स्वाधीनता के ३९ वर्षों के बाद भी वही शिक्षा एवं परीक्षा प्रणाली प्रचलित है। आज हमारे स्कूल, कालेज एवं विश्वविद्यालय मात्र क्लर्क उत्पादन केन्द्र बन कर रह गये हैं और प्रति वर्ष लाखों शिक्षित अकर्मण्यों की फौज इन शिक्षा केन्द्रों से प्रमाण पत्र लेकर निकलती है। शिक्षा पद्धति एवं उसको उत्तीर्ण करने के लिये आयोजित परीक्षा प्रणाली की नीति का निर्धारण सरकार करती है। सरकार शिक्षा

प्रसार पर काफी बल भी देती रही है और एक बहुत बड़ी धनराशि इस पर प्रतिवर्ष व्यय होता है। लेकिन सबसे बड़ी सोचने की बात तो यह है कि ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रसार बढ़ता जाता है त्यों-त्यों बेकारी भी बढ़ती जाती है। इसका दायित्व किस पर है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन उनसे प्रश्न तो पूछा ही जा सकता है कि क्या इसी शिक्षा तथा परीक्षा प्रणाली पर देश में शासन चलेगा ? इतने मूल्य की विविध पुस्तकें, इतने बड़े-बड़े संस्थानों के भवन बड़े-बड़े मनीषी शिक्षक, हेड मास्टर, प्रिन्सिपल, विश्वविद्यालय हैं। गत् १९४७ के बाद से देश में स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालय अपने-अपने दायरे के अनुमान से बहुत ज्यादा तादाद में नये खुले हैं, सारे भरती होने पर भी और भी खुले तो वह भी भर जायेंगे।

मैंने अभी एक राष्ट्रीय स्तर के विख्यात पत्र में शिक्षा, परीक्षा के सम्बन्ध में एक सुयोग्य लेखक द्वारा लिखित लेख पढ़ा और उसे पढ़ कर ऐसा लगा कि इस शिक्षा में भी घुन लग गया है। जिस पवित्र शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण करना था वह आज छात्र-छात्रायें केवल डिग्री प्राप्त करने के उद्देश्य से परीक्षाओं में सम्मिलित होते हैं और वह भी मिथ्या या छल युक्त तरीके से। यह सब कैसी विडम्बना है। एक युग ऐसा था जब न पुस्तकें थी और न कलम-दावात तथा कापियाँ ही, आज की भाँति विशाल भवनों वाले शिक्षा संस्थान भी नहीं थे। उस समय घर से दूर रह कर सभी वर्गों के छात्र एक साथ गुरुकुल, पाठशाला या ब्रह्मचर्याश्रम कोई नाम रख लीजिये, शिक्षा प्राप्त करते थे। वे केवल आचार्य की सेवा में ही समर्पित थे और आचार्य उन्हें मौखिक ही जीवन के विशाल अनुभव से प्राप्त नवनीत शिक्षा प्रदान करता था। आचार्य के सानिध्य में रात-दिन रहने के कारण वह छात्रों की प्रवृत्ति के अनुसार ही शिक्षा प्रदान कर गुण सम्पन्न बनाता था। उसी आचार्य की छत्र छाया में छात्रों को राजधर्म, शस्त्र विद्या, व्यवहारिक शिक्षा के साथ-साथ ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास धर्म की शिक्षा दी जाती थी। क्या हम आज भी इन शिक्षाओं की उपयोगिता को अस्वीकार कर सकते हैं ?

शिक्षा एवं चरित्र निर्माण की प्रक्रिया में पारंगत छात्र ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति पर आचार्य महोदय के पास जाकर अत्यन्त विनम्र भाव से कहता था—महाराज ! अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं घर जाकर अपने भावी कर्तव्य का पालन करूँ ? उस समय आचार्य सभी के सामने उस शिष्य से जीवन पर्यन्त ६ बातें पालन करने की प्रतिज्ञा करवाता था। वे ६ बातें यह थी—(१) सत्यवद - जीवन भर सत्य को ही मान कर चलो। (२) धर्मंचर-

धर्म का ही आचरण करो (३) मातृ देवो भव-माता को ईश्वर के समान समझो (४) पितृ देवो भव-पिता को ईश्वर के समान समझो (५) आचार्य देवो भव-आचार्य को देव स्वरूप समझो तथा (६) अतिथि देवो भव-अतिथि को साक्षात देवता मानो। इन ६ बातों की छात्र से हाँ भरवा कर आचार्य उसे घर जाने की आज्ञा देता था। अब आप स्वयं समझिये कि चरित्र निर्माण की सुदृढ़ नींव पर खड़ा होने वाला छात्र कैसा नागरिक बनता होगा ?

आज वह युग नहीं है, लेकिन सत्य की महत्ता तो झुठलाई नहीं जा सकती असत्य का सहारा लेकर अवैध ढंग से डिग्री प्राप्त करने वाले छात्र जीवन में कितने सत्य-पालक होते हैं ? उनका समस्त जीवन ही मिथ्याडम्बरों से भरा होता है। जिस पत्र की बात मैंने ऊपर लिखी है उसी में प्रकाशित लेख के लेखक श्री गंगाप्रसाद मिश्र ने कई बड़े-बड़े पदों पर रह कर जो भी अनुभव प्राप्त किया है उसी का उल्लेख करते हुये लिखा है कि आज भी बहुत सी शिक्षा संस्थयें हैं जिन्हें अध्यापक गण केवल व्यावसयिक दृष्टिकोण से चला रहे हैं। वे स्कूलों को भी व्यापार का एक स्थान समझते हैं। ऐसे भी स्कूल होंगे जहाँ परीक्षाफल शत प्रतिशत दिखाने के लिये छात्रों को पूरी सुविधा दी जाती हो।

केवल डिग्री प्राप्त करने के उद्देश्य से परीक्षा में सम्मिलित होने वाले छात्र नकल करने के जो विविधि तरीके अपनाते हैं वे भी कम विस्मयकारी नहीं होते। लेखक महोदय ने अपने निबन्ध में लिखा है कि दो छात्र जूतों की आवाज से नकल करते देखे गये। टेलीग्राफ विभाग में काम करने के कारण उन्हें अभ्यास था कि किस प्रकार के टिक-टिक करने से किस शब्द का आभास होता है। वे दोनों ही टेलीग्राम विभाग के कर्मचारी थे। एक स्थान पर उन्होंने उल्लेख किया है कि छात्राएँ किस प्रकार से नकल करती है। कोई ओढ़नी में लिखकर लाती थी तो कोई साया में लिखकर लाती थी। साया में लिख कर लाये उसको पकड़ना भी एक समस्या है। ऊपर जारजेट या नाइलोन की साड़ी पहन लेने से विशेषता यह है कि नीचे के साया से चिपकी रहती है तब तो लिखा हुआ साफ दिखलाई पड़ता है और जरा भी अलग रहने से बिलकुल नहीं। ऐसे ही न जाने कितने तरीके नकल करने के लिये प्रयोग में लाए जाते हैं। एक स्थान पर तो ऐसा भी देखा गया कि एक शिक्षक महोदय स्वयं परीक्षा दे रहे थे। नकल करते जब वे पकड़े गये तो उन्होंने नकल करने के पक्ष में जो दलीलें दी वे इस प्रकार हैं, हम दिन भर पढ़ाते हैं, रात को ट्यूशन करते हैं, हमें पढ़ने का मौका ही कब मिलता है।

हमारे भी परिवार है, गृहस्थी का काम कैसे चले और यदि नकल न करें तो प्रमोशन कैसे मिले।

लेखक महोदय ने इन सब बातों पर अत्यन्त विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है और तथ्य सही कहा जा सकता है। आप ही सोचें कि प्रमोशन तो योग्यता पर निर्भर करता है और डिग्रियाँ उस योग्यता का प्रमाण होता है। लेकिन अयोग्य होकर भी योग्य बनने के लिये अवैध तरीके अपनाना क्या तर्क संगत है? यदि आप योग्य नहीं हैं और केवल किसी प्रकार डिग्री प्राप्त कर लेते हैं तो आपके द्वारा तैयार किये गये छात्र-छात्रायें कितने योग्य बनेंगे और कर्तव्य के पथ पर कितनी निष्ठा से चल सकेंगे? यही, प्रतिद्वन्द्विता में क्या वे ठहर सकेंगे? फिर आपने जो पीढ़ी के निर्माण का दायित्व अपने कंधों पर लिया है उसके साथ खिलवाड़ करना उचित है?

आज छात्र-छात्राओं की संख्या प्रति वर्ष बढ़ती जा रही है। जब भी नया विद्यालय खोलिये, वह तुरन्त भर जाता है. शिक्षा के प्रसार के साथ साथ शिक्षा का स्तर भी गिरता जा रहा है. वह आप स्वयं देख रहे हैं। मेरा अपना स्वयं का अनुभव है कि कई हाई स्कूल तथा हायर सेकेण्डरी स्कूलों के प्रधानाध्यापकों को अच्छा वेतन मिलता है, फिर भी वे स्कूल में रह कर बाहर रहते हैं। ऐसे स्कूलों का परीक्षा-फल निरन्तर गिरता जाता है, फिर भी प्रधान साहब यह सोचते तक नहीं यह स्तर क्यों गिर रहा है। उनका उद्देश्य ज्ञान दान कर भावी पीढ़ी का निर्माण करना नहीं, अपितु अपना ही काम बनाना है। कई विद्यालयों में तो ट्यूशन खोजी अध्यापक अपना दल बना लेते हैं और छात्रों के अभिभावकों पर घर पर पढ़ाने की व्यवस्था करने हेतु दबाव भी डालते हैं। यदि उनका दबाव कारगर हो गया तो वे अपने विषय के साथ-साथ अन्य विषय गणित, विज्ञान आदि के लिये अपने दल के अन्य अध्यापक का ट्यूशन के क्षेत्र में इन महोदय की सिफारिश करता है। यदि किसी अभिभावक ने दल के बाहर के योग्य अध्यापक को ट्यूशन पर रख लिया तो यही महोदय अपने विषय में उस छात्र को फेल कर देते हैं। इस प्रकार योग्य अध्यापक हट जाता है और बेचारा छात्र एवं अभिभावक दल के दलदल में फंस जाते हैं। इसके बाद दौड़-धूप शुरू होती है। परीक्षा में सम्बन्धित छात्र के नम्बर बढ़वाने के लिये।

ये सभी बातें देश के भविष्य के लिये कितनी खतरनाक है। यदि छात्रों का समुचित निर्माण या विकास न किया गया तो इसका भयंकर दुखद परिणाम देश को भोगना ही होगा। इसके अतिरिक्त एक और गम्भीर बात पाठ्यक्रम की पुस्तकों के सम्बन्ध में है। कुछ प्रकाशकों एवं हेड मास्टरों के

गुप्त तालमेल से ही पुस्तकें पाठ्यक्रम में सम्मिलित की जाती है। इस सौदे में भी हेड मास्टरों की जेब में कुछ राशि जाती है। जो प्रकाशक सौदेबाजी में जितना पटु होता है उतना ही उसका क्षेत्र विशाल होता है। फिर प्रकाशकों का धन्धा भलीभाँति चलाने के लिये लगभग प्रतिवर्ष कुछ नई पुस्तकें भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर ली जाती हैं। वे पुस्तकें शुद्ध छपी हैं या अशुद्ध. कौन इस ओर ध्यान दे। शिक्षा जगत में भ्रष्टाचार यही नहीं समाप्त होता है। कोचिंग शिक्षाओं के नाम पर छात्रों से अतिरिक्त शुल्क तो लिया ही जाता है. इसके अतिरिक्त रात को स्कूल के छात्रों के अतिरिक्त बाहरी छात्रों को भी शिक्षा देते हुए सुना गया है। शुल्क अध्यापकों में हिस्सेवार बंट जाता है। अब और ही विचार करें कि ऐसे शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करनेवाले छात्र किस स्वभाव के होंगे, उनमें किस प्रकार के संस्कार उत्पन्न होंगे। जब से देश के शासन की बागडोर अपने हाथ में आई, भारत सरकार का रवैया प्रारम्भ ही से शिक्षा क्षेत्र में अत्यन्त नरमी का रहा है। यह राष्ट्र के लिये महान दुर्भाग्यपूर्ण है। प्रान्तों में भी यही हाल है। जिस किसी को शिक्षा मन्त्री का पद दिया गया, उसे व्यक्तिगत रूप से शिक्षा की समस्याओं एवं स्तर को देखने का समय ही नहीं मिलता। वह केवल अपने अधिकारियों से पूछ कर ही संसद या विधान सभाओं में प्रश्नों का उत्तर दे देते हैं। बस मन्त्री का काम हो गया। यह विकृति, यह विसंगति एवं यह विडम्बना देखकर मन में कितना दुख होता है कहा नहीं जा सकता। पर क्या किया जाए। देश में बड़े-बड़े विचारक और बुद्धजीवी हैं, पर बिगड़े हुए ढांचे को बुनियादी समस्याओं पर चिन्तन करने के लिये किसके पास समय है। किसी को भी चिन्ता नहीं है। सभी अपने-अपने स्वार्थ साधन में रत हैं।

आज जीवन के हर क्षेत्र में नित नई विरूपताएं सुरसा के समान मुँह खोले खड़ी हैं। स्वास्थ्य के सम्बन्ध में तो और भी बुरा हाल है। सरकारी अस्पतालों में रोगियों की अवस्था बद से बदतर हो रही है। कोई मालिक नहीं, कौन सुने? डाक्टर और कर्मचारी केवल धन पर ही आँख लगाए रहते हैं। रोगी मरते हैं, कारण कि दवा नहीं मिलती और जो दवाइयाँ आती हैं गुम हो जाती हैं। समर्थ लोग तो किसी-न-किसी प्रकार प्रबन्ध कर लेते हैं लेकिन गरीब को कहीं भी सुविधा नहीं। आज देश ऐसे कीचड़ में फँसा है कि तन एवं मन दोनों बीमार हैं। मन की दवा शिक्षा एवं तन की दवा स्वास्थ्य भ्रष्टाचार की ज्वाला से भुने गये हैं। इन सब के मूल में शिक्षा ही प्रधान है। शिक्षा संस्थाओं से ही देश के भावी नागरिक ढल कर निकलते

हैं और जब मूल ही अशुद्ध हो तो जीवन के क्षेत्र में विसंगतियाँ क्यों न हो। ऐसी शिक्षा पद्धति से पढ़ कर निकले हुए डाक्टरों, इंजीनियरों, अधिकारियों से और आशा ही क्या की जा सकती है। यदि समय रहते हमने इस ओर पूर्ण ध्यान न दिया तो कोई शक्ति नहीं जो इस देश को सम्भावित खतरों से उबार सकें।

जनमंगल ६-७-७८

सन्त चरवाहा

आदमी जब मन में कोई चीज ठान लेता है तो उसे कोई भी काम करने में बाधा उपस्थित नहीं होती। इसके लिये ईश्वरीय शक्ति उसे मिलती रहती है। एलझर्ड बोफियर नामक एक चरवाहे की कथा है, जिसे मैत्री में जीन जियानी ने लिखा है। इसे पढ़ेंगे तो आपके मन में रुचि और बड़ा उत्साह पैदा होगा। एक चरवाह, किस रूप में एकान्त स्थान और निर्जन, जहाँ न कोई वृक्ष है, न मनुष्य है, न कोई साथी है, जगह में अनवरत रहते हुये अपना कर्तव्य पालन किया करता था, यह उस चरवाहे के जीवन की कहानी है। उसे आप देखेंगे तो आपके मन में एक ईश्वरीय प्रेरणा पैदा होगी।

करीब ६०-६५ वर्ष पहले की बात है। फ्रांस के आल्पस पहाड़ों के क्षेत्र में मैं पदयात्रा कर रहा था। इस क्षेत्र का उत्तरी हिस्सा बिलकुल ही वीरान जैसा था वैसे तो यह पर्वतमाला तीन-चार हजार फुट ऊंचाई की थी, परन्तु थी बिलकुल नग्न, वृक्ष विहीन। बीच बीच में कहीं जंगल तथा काँटों से भरे झुण्ड जाते थे। बहुत भटकने के बाद मैं एक वीरान गाँव में जा पहुंचा। जहां कोई झरना या पुराना कुँआ मिल जायगा, ऐसी उम्मीद थी। कुँआ वहां मिला तो सही, लेकिन वह निर्जल था।

जून का महीना था, सूर्य सिर पर था, बिना पानी की जगह पर ठहरने में कोई सार न देखकर मैंने अपना बोझा उठाया और आगे बढ़ गया। लगातार ५ घण्टे चलने पर भी कहीं पानी नहीं मिला। इतने लम्बे सफर के बाद भी वही भूगोल था—छोटे-छोटे पहाड़ और उस पर काँटों के झुण्ड।

थोड़ी देर बाद दूर एक लम्बी काली चीज दिखायी दी : कोई सूखा पेड़ होगा, यह सोच कर मैं वहाँ जा पहुंचा। अरे, यह तो चरवाहा था, कितनी देर से बिल्कुल सीधा खड़ा था। इर्दगिर्द की झाड़ियों में चरने वाली ३०-४० भेड़ों की निगरानी पर था।

अपने मोटे कपड़े के लोटे से उसने मुझे पानी पिलाया। मेरी प्यास की तीव्रता देखकर वह मुझे अपने घर ले गया। टीले के मैदान में उसका घर था और एक छोटा-सा टूटा-फूटा कुँआ भी था। मुझे उसका पानी पीने में अमृत सा लगा।

इस बीच हम दोनों में कोई खास बातें नहीं हुई। वह बहुत ही कम बोलता था। ऐसे ही निर्जन क्षेत्रों में रहने वाले कम ही बोला करते हैं। परन्तु इसके चेहरे पर मैंने गजब का आत्मविश्वास देखा। ऐसे निर्जन क्षेत्र में वह रहता था, यही आश्चर्य था। किसी एक गुफा की कुछ मरम्मत कर उसको रहने लायक बनाया था। अन्दर सामान कम था लेकिन साफ-सुथरा था। उसके कपड़े थिगली वाले थे, परन्तु साफ थे।

रात का भोजन हमने साथ किया। खाने के बाद मैंने अपने झोले में से चिरुट निकाल कर उसको दी। थोड़ा मुस्कराते वह बोला, मैं तमाकू नहीं पीता। घर की देहरी पर बैठा उसका कुत्ता भी वैसा ही शान्त प्रकृति का था।

अन्धेरा होते ही उस वृद्ध चरवाहे ने झोले में से ओक की सूखी गांठे निकाल कर टेबल पर रखीं और उसमें से बहुत ध्यानपूर्वक एक-एक गांठ अलग करता रहा। मैं दरी पर बैठा चिरुट पी रहा था। बीच में मैंने पूछा कि मैं मदद कर सकता हूँ ? 'तो उसने कहा नहीं, कोई जरूरत नहीं, यह तो मेरा अपना ही काम है बस बातचीत हमारे बीच हुई। काफी देर तक वह अपना काम करता रहा और आखिर अच्छी से अच्छी गाँठें चुनकर उसने दस-दस गांठों के दस ढेर लगा दिये। फिर वे चुनी हुई सौ गांठें एक झोले में भरकर रख दीं और सो गया।

इस आदमी के साथ रहने में आनन्द आ रहा था, इसलिये दूसरे दिन मैंने और एक दिन रहने की अनुमति माँगी। उसने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा और बोला, आपके रहने से मुझे कोई तकलीफ नहीं होगी। मुझे आराम की जरूरत नहीं थी, मैं तो इस रहस्यमय मनुष्य की विशेष जानकारी प्राप्त करना चाहता था।

सुबह सीटी बजाकर अपनी भेड़ों को बाहर निकाला, और जाने से पहले, रात को चुनकर रखी हुई उन सौ ओक की गाँठों के झोले को पानी

में भिगो दिया। फिर कोने से लोहे की पतली कुदाल उठा ली और भेड़ों को लेकर टीले के उस पार चला गया। थोड़ी देर बाद मैं भी उस दिशा में गया। उसकी भेड़ें और भेड़ों की निगरानी करने वाला उसका कुत्ता दिखायी दिया, वहाँ से उसने चिल्लाकर कहा कि मेरे पास आ सकते हो।

साधना के पथ पर

मैंने वहाँ जाकर देखा कि वह क्या कर रहा है। वह जगह चुन लेता, वहाँ छोटा-सा गड्ढा करता और अपने झोले में से एक गाँठ निकाल कर वहाँ बो देता। ऊपर मिट्टी ढांक देता। ओहो, तो यह ओक के पेड़ लगा रहा है। मैंने पूछा, यह तुम्हारी जमीन है? उसने कहा, नहीं। इस जमीन के मालिक को तुम पहचानते हो? सिर हिला कर कहा—ना। यह जमीन किसकी है, इसकी उसको कोई फिक्र नहीं थी। वह तो सिर्फ पेड़ बो रहा था। अत्यन्त ध्यानपूर्वक उसने सौ गांठें बो दीं।

दोपहर के भोजन के बाद फिर वही काम चला। मैं उससे सवाल पूछता गया, वह जवाब देता गया। पिछले तीन सालों से वह इस वीरान प्रदेश में पेड़ लगा रहा था। अभी तक उसने एक लाख ओक की गांठें बोयी थीं, उनमें से बीस हजार बीजों के अंकुर आये थे। इस क्षेत्र की भीषण गर्मी में दस-एक हजार पौधे तो वैसे ही सूख जायेंगे, या चूहे उन्हें नष्ट कर देंगे, इसकी आशंका तो उसको थी, फिर भी उसका अन्दाज था कि १० हजार पेड़ तो उगने ही चाहिये। जहाँ एक भी पेड़ नहीं, वहाँ १० हजार पेड़ लहरायेंगे।

कितनी उम्र होगी इस आदमी की? पचपन साल-बहुत धीरे से उसने कहा। और नाम? मुझे एलझर्ड बोफियर कहते हैं।

दूर मैदान के क्षेत्र में उसकी खेती थी। पहले इकलौता बेटा भगवान के पास चला गया, फिर पत्नी गयी और घर खेती छोड़कर अपनी भेड़ो को लेकर वह इस निर्जन वीरान प्रदेश में चला आया उसने देखा, इतना अच्छा क्षेत्र है, परन्तु पेड़-पौधों की कमी से निकम्मा पड़ा है, मेरे अपने पास कोई जरूरी काम भी नहीं था। तो क्यों न यहाँ पेड़ लगाये जायें। इस तरह इस वीरान प्रदेश में ओक के पेड़ लगाने का काम उसने शुरू कर दिया।

मैंने कहा अगले ३० सालों में यहाँ ओक के १० हजार पेड़ खड़े होंगे; तब वह दृश्य कितना भव्य होगा। अत्यन्त सरलता पूर्वक उसने जवाब दिया—भगवान की कृपा होगी और ३० साल जीने की मुझे इजाजत मिलेगी

तो भविष्य में मैं ही यहाँ इतना पेड़ लगाऊँगा कि १० हजार पेड़ की कोई गिनती ही नहीं होगी।

दूसरे दिन मैं वहाँ से लौटा। अपने घर वापस आया। १९१४ से १८ तक युद्ध के मोर्चेपर लड़ने का काम मैंने किया। उस वक्त पेड़-पौधों के बारे में सोचने का समय ही कहाँ से होगा ? सत्य बात तो यह थी कि उस घटना ने मुझे इतना प्रभावित भी नहीं किया था। मुझे तो केवल निरुद्देश्य घूमने का शौक बराबर रहता था।

युद्ध खत्म हुआ। ५ साल लगातार बारूद का धुआँ अन्दर खींच-खींच कर मेरी नाक फट रही थी ? शुद्ध हवा के लिये मैं तड़प रहा था और एक दिन फिर से वीरान प्रदेश की ओर निकल पड़ा। परन्तु वह प्रदेश तो जैसा था वैसा ही रूखा-सूखा गरम, वीरान दीख रहा था। अपने आप मेरे पैर उस गांव की ओर चल दिये। इतने साल के बाद वहाँ कुछ नहीं बदला था। एकाएक मुझे वह चरवाहा याद आया। दस हजार ओक के पेड़।

पांच साल के युद्ध में अगणित लोगों को मरते हुए देखा था। मौत के इस चुनाव के इस अनुभव के बाद एलझर्ड को भी मरा हुआ मानने में मुझे कोई शंका नहीं थी। परन्तु उस गुफा तक मुझे पहुंचने पर मालूम हुआ कि वह मरा नहीं था, वह अच्छी तरह स्वस्थ और प्रसन्न दिखायी दे रहा था। हाँ, लेकिन उसका धन्धा जरूर बदला था। भेड़ों के बदले उसने मधुमक्खियों को पालने का काम शुरू किया था। ओक के लिये भेड़ें दुश्मन सिद्ध हो रही थीं। इस बीच जो महायुद्ध हुआ उसके बारे में उसको कुछ भी मालूम नहीं था। दुनिया लड़ती रही और वह बेफिकर पेड़ लगाता रहा। इतने बड़े युद्ध ने उसके काम में थोड़ा सा भी अदल-बदल नहीं किया।

अद्‌भुत दृश्य

१९१० में लगाये हुए पेड़ों की ऊँचाई अब हमारे कंधों तक पहुंची थी। सामने का दृश्य कितना अद्‌भुत था। मैं गद्‌गद् हो गया, कुछ भी बोल नहीं सका, और वह चुप ही था। दिन भर हम दोनों चुपचाप जंगल में घूमते रहे। लगभग ११ किलो मीटर लम्बा जंगल, इसी एक चरवाहे की करामात थी। यह बात मुझे बराबर हिलाती रही। आधुनिक यंत्रों की कुछ भी मदद लिये बगैर, बस, लोहे की कुदाल के सहारे, इस बोफियर ने साहस से कितना काम कर दिखाया। मुझे लगा सृजन के बारे में मनुष्य

भगवान से भी टक्कर ले सकता है। बस ! विध्वंस में वह भगवान के पीछे रह जाता है।

जहाँ तक दृष्टि पहुंचती थी वहाँ तक कन्धे बराबर ऊँचे पेड़ ही पेड़ नजर आ रहे थे। अब तो मजबूत हो गये थे और अब उनपर गर्म हवा या जंगली चूहों का असर नजर नहीं आता था। प्रलय के सिवाय अब इन पौधों को कोई डर नहीं था। १९१५ में लगाये गये पौधे भी उसने मुझे दिखाये। मुझे याद आया कि मैं जब मोरचे पर लोगों को मारा था, तब उस समय यह वृद्ध मनुष्य इस वीरान प्रदेश के जंगल में मंगलकर रहा था। याने जहाँपर एक भी पेड़ नहीं था वहाँ इतने पेड़ उसने अपनी लगन से लगाये थे। उसके इस कार्य का असर चारों ओर फैल रहा था। परन्तु उससे वह अनजान था। खंडहर में परिवर्तित गाँव के उस कुएं में फिर से पानी भर आया था। वर्षों से सूखी इस धरती पर अब विलक्षण अरण्य उग जाने के कारण जगह-जगह छोटे-छोटे झरने बहने लगे थे। चारों ओर हवा बीजों को बिखेर रही थी। छोटे-छोटे झरनों और नदियों के जन्म के कारण इस प्रदेश में हरियाली, घास के मैदानों और जंगली फूल-पौधों की बख्शीश भी प्राप्त हुई थी।

१९२० के बाद हर साल मैं अचूक बोफियर से मिलने जाता था। हर वक्त मैंने उसका वही उत्साह और कार्य में निमग्नता पायी। उत्साह से भरपूर उसको अपने काम में लगे हुए देखा। यह काम उसके लिए महाभारत जितना कठिन था। एक साल उसने १० हजार बीज लगाये थे, परन्तु उसमें से एक भी अंकुर नहीं फटा था। परन्तु उसने हिम्मत नहीं हारी।

सरकारी अधिकारी भी जाग गये

इस सूनसान क्षेत्र में जंगल इतना बढ़ कर खड़ा हो गया था कि यह पराक्रम वर्षों से एकाकी जीवन बिताने वाले इस वृद्ध चरवाहे का था, ऐसी कल्पना भी किसी को नहीं थी। उस क्षेत्र के सरकारी अधिकारियों ने तो मान लिया था कि यह प्रकृति की देन है और उस प्राकृतिक जंगल को सम्हालने के लिए अब वन-विभाग भी शुरू हो गया था। १९३३ में पहली बार वन अधिकारियों ने इस क्षेत्र का दौरा किया। जंगल की सरहद पर इस बूढ़े गड़ेरिये की झोपड़ी देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। वह वहाँ पहुंचा तब बोफियर रसोई पका रहा था। उस अधिकारी ने उसको धमकाया, आग की चिनगारी जंगल में कहीं आग न फैला दे इसलिये सूचना दी। वृद्ध बोफियर ने अधिकारी की सूचना का कोई जवाब नहीं दिया। जीवन के

अन्तिम दिनों में उसने कम बोलना भी वन्द कर दिया था—वोलने की शायद उसको जरूरत भी नहीं थी। वह ७५ साल का हुआ था। अव वह अपनी झोपड़ी से वाहर १-१।। किलोमीटर दूर एक नया जंगल उगाने में मग्न था, रोज इतनी दूर आना जाना अव उसकी शक्ति के बाहर लग रहा था। इस नये जंगल के पास अपनी झोपड़ी ले जाने की तैयारी में वह था। अधिकारी की सूचना का जवाव देने की आवश्यकता उसने महसूस नहीं की।

१९३५ में वन विभाग की ओर एक उच्च अधिकार समिति ने इस जंगल का मुवायना तक किया। उसमें वरिष्ठ अधिकारी के अलावा एक संसद सदस्य और कई तकनीकी भी थे। जंगल प्रवास के वाद दोपहर का शानदार भोजन हुआ, शाम को प्रकृति की इस अनुपम देन के वारे में जोरदार भाषण हुए। सर्व सम्मति से तय किया गया कि इस विशाल 'प्राकृतिक' जंगल की रक्षा के लिये अव कदम उठाने चाहिए। यद्यपि इस तरह के कोई कदम उठाये नहीं गये थे। यह जंगल एक सद्भाग्य था। इन विशेषज्ञों की टोली में एक व्यक्ति को मैं पहचानता था। एक दिन मैंने बुलाकर 'प्राकृतिक वन' का रहस्य खोल दिया। यह सारी जानकारी प्राप्त करने के बाद वह अवाक रह गया। एक बूढ़ा आदमी इतना बड़ा पराक्रम कर सकता था इसका उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था।

बोफियर से भेंट

दूसरे दिन हम दोनों बोफियर से मिलने निकले। उसी लगन में वह नये पौधे लगाने में तन्मय था। मेरा मित्र समझदार था। कब मुँह खोलना चाहिए और कब मौन रहना चाहिए, इसका विवेक उसमें था। हमारे साथ ही ब्रेड और दूसरी चीजों को साथ मिलाकर हम तीनों ने भोजन किया। घण्टों तक हम वहीं थे, पर कोई कुछ बोल नहीं रहा था। सबसे पहले वोये हुये पेड़ अब १८ से २० फुट ऊँचे हो गये थे। तो एकदम घना जंगल ही वन गया था। उसकी १९३३ की स्थिति याद करने की कोशिश मैंने की। वृद्ध बोफियार की तरफ मैंने देखा। उसकी देह थकी नहीं, चेहरे पर वही आत्म विश्वास चमक रहा था। मेरे मित्र की समझदारी ने वोफियार और उसके जंगल की सर्जकता को टिकाये रखा। अपने परिचय का उपयोग करके उसने वोफियार के काम में कोई बाधा नहीं खड़ी की और उसे पूरा सम्मान देने की सूचना जंगल का आरक्षण करने वाले तीन प्रामाणिक अधिकारियों को दे दी।

केवल एक वार जंगल का रक्षण करना कठिन हो गया था। दूसरा विश्वयुद्ध शुरू हो गया था और जलाने के लिये लकड़ियों की जरूरत बढ़ गयी थी १९१० में लगाये गये पेड़ कटकर जमीन पर गिराये जा रहे थे, परन्तु सीधी सड़क से वह जंगल इतना दूर पड़ता था कि लकड़ी काफी महँगी पड़ जाती थी, इसलिये वह योजना वहीं रुक गयी। वोफियार वहाँ से अव काफी दूर, ३० किलोमीटर दूर चुपचाप नया जङ्गल उगाने में डूबा था। उसको यह पेड़ कब काटना शुरू हुआ, काटना कब बन्द हुआ दोनों बातें मालूम ही नहीं थी। पहले विश्वयुद्ध से भी वह वेखबर ही रहा।

लहलहाते खेत : घनी आबादी

१९५४ के जून महीने में मैं उससे आखिरी वार मिला, तब वह ८७ साल का था। इस वार मैं बस से गया था। किसी दूसरे रास्ते से मैं उस गांव में पहुंचा ऐसा मुझे भ्रम हुआ, परन्तु रास्ता वही था, केवल सारा सन्दर्भ ही बदल गया था। १९१३ में इस गांव में केवल तीन परिवार थे। परन्तु आज वह गांव आवाद और खुशहाल था। घर वार सव साफ सुथरे थे, खेत हरियाली से लहलहा रहे थे और सब तो ठीक खुद मौसम भी वदल गया था। पहले की सूखी गरम हवा की जगह सुगन्धित हवा चल रही थी। पहाड़ियों पर से समुद्र जैसे गर्जन जैसी आवाज आ रही थी। वह वृक्षों के साथ खेलने वाली आवाज थी। नजदीक से सुनायी देते झरने के निनाद ने तो मुझे चौंका ही दिया। उसी झरने के किनारे गांव वालों ने एक नया जङ्गल खड़ा कर दिया। नयी आशा और नयी सम्भावना का मानो यहाँ पुनर्जन्म ही हुआ था।

मैं उस गाँव में से पैदल ही गुजरा। पहले जहाँ खण्डहर थे, वहाँ अब मकान, लहलहाते खेत देखे। दूर-दूर तक अनेक नये गाँव बसे हुए थे। मैदानी प्रदेश से आये हुए लोग प्रसन्न-चित्त और हृष्ट पुष्ट दिखायी दिये। यौवन से प्रदीप्त चेहरों पर मुक्त हास्य देखने को मिला। अब इस नये क्षेत्र में दस हजार की आबादी सन्तोष पूर्वक अपना जीवन विता रही है।

केवल एक वृद्ध पुरुष के पुरुषार्थ के कारण इतना बड़ा काम हुआ यही समझने का है।

राष्ट्रमित्र, अगस्त १९७८

हंस के रूप में ब्रह्म !

हमारे आर्य ग्रन्थों में ऐसे अनेक आख्यान हैं, जिनको यदि हृदयंगम किया जाए तो मानव मात्र को हिंसा, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या आदि गर्हित भावों से मुक्ति मिल सकती है। हम उन अख्यानों में निहित शिक्षाओं का पालन कर अपने अन्तःकरण को शुद्ध एवं सात्विक बना सकते हैं। इन प्रसंगों में सद् विचारों के रूप में ऐसे अनेक रक्षक कवच हैं जिनके धारण करने से कोई भी अपने को दुर्भावना जनित विपत्तियों से बचा सकता है। अपनी सद्वाणी के माध्यम से लोक मंगल के आराधक ऋषियों ने मानव मात्र को अपूर्व रक्षा कवच प्रदान किए हैं। उन सद् विचारों एवं वाणियों के द्वारा हम अपने हृदय पटल पर जमे दूषित तत्वों को साफ कर बुद्धि एवं अन्तःकरण को शुद्ध निर्मल एवं सात्विक बनाते हैं। मनीषियों द्वारा प्रदत्त ये अमोघ उपाय दुस्साध्य नहीं हैं, अपितु सुलभ एवं व्यवहारिक हैं। उदाहरण के लिये एक प्रसंग है—जैसे बोलने से अनेक आपदाएं अगर आ जाती हो तो उनके परिमार्जन का एक ही उपाय है—'वाणी संयम अथवा मौन।'

ऐसा ही एक प्रसंग महाभारत में है। एक बार राजा युधिष्ठर ने भीष्म पितामह से पूछा—'पितामह ! संसार में अनेक विद्वान सत्य, दम, क्षमा और प्रज्ञा की प्रशंसा करते हैं। इस विषय में आपके क्या विचार है ?

भीष्मजी ने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषय में साध्यगणों का हंस के साथ जो संवाद हुआ था, वही पुराना इतिहास मैं तुम्हें सुना रहा हूं। एक समय नित्य अजन्मा प्रजापति हंस का स्वरूप धारण करके तीनों लोकों में विचर रहे थे। घूमते-घूमते वे सांध्यगणों के पास पहुंचे। उस समय साध्यों ने उनसे कहा—'हंस हम लोग साध्य देवता हैं और आपसे मोक्षधर्म के विषय में प्रश्न करना चाहते हैं, क्योंकि आप मोक्षतत्व के ज्ञाता हैं। महात्मन् ! हमने सुना है ; आप पण्डित और धीरवक्ता हैं। आपकी उत्तम वाणी (अथवा कीर्ति) का सर्वत्र प्रचार है। इसलिये पूछते हैं. आप के मत में सर्वश्रेष्ठ वस्तु क्या है ? किसमें आपका मन रमता है ? पक्षिराज ! समस्त कार्यों में से जिस एक कार्य को आप सबसे उत्तम समझते हों तथा जिसके करने से जीव को सब प्रकार के बन्धनों से शीघ्र छुटकारा मिल सके, उसीका हमें उपदेश दीजिये।'

हंस ने कहा—'अमृत पीने वाले देवताओं ! मैं तो सुनता हूँ—तप, इन्द्रियसंयम, सत्यभाषण और मनोनिग्रह आदि कार्य ही सबसे उत्तम हैं। हृदय की गांठें खोल कर प्रिय और अप्रिय को अपने वश में करें। (अर्थात्

उनके लिए हर्ष और विषाद न करें) किसी के मर्म में आघात न पहुंचावें, दूसरों से निष्ठुर बात न बोले, नीच मनुष्य से शास्त्र का रहस्य न समझें तथा जिसे सुनकर औरों को उद्वेग हों, ऐसी नरक में डालने वाली अमंगलमयी बात भी न कहें। वचनरूपी वाण जब मुंह से निकल पड़ते हैं तो उनकी चोट खाकर मनुष्य रात-दिन शोक में डूबा रहता है। वे दूसरों के मर्म पर ही आघात पहुंचाते हैं, इसलिये विद्वान पुरुषको किसी पर वाग्वाण का प्रयोग नहीं करना चाहिये। दूसरा कोई भी यदि विद्वान को कटु वचन रूपी वाणों से खूब घायल करे तो भी उसे शान्त ही रहना चाहिये। दूसरों के क्रोध करने पर भी जो बदले में प्रसन्न ही रहता है वह उनके पुण्य को ग्रहण कर लेता है।

जो जगत में निन्दा करने वाले और आवेश में डालने वाले प्रज्वलित क्रोध को रोक लेता है, जिसका चित्त शान्त एवं प्रसन्न रहता है तथा दूसरों के दोष नहीं देखता, वह पुरुष अपने से द्वेष रखने वालों के पुण्य ले लेता है। मुझे कोई गाली दे तो भी उसे क्षमा करता हूँ। आर्यजन क्षमा, सत्य, सरलभाव और दया को ही श्रेष्ठ बताते हैं। वेदाध्ययन का फल है सत्यभाषण, उसका फल है इन्द्रिय संयम और इन्द्रिय संयम का फल है मोक्ष। यही सम्पूर्ण शास्त्रों का आदेश है। जो वाणी मन, क्रोध, तृष्णा, उदार तथा जननेन्द्रिय के प्रचण्ड वेग को सह लेता है, उसी को मैं ब्राह्मण और मुनि मानता हूँ।

क्रोधी से क्रोध न करने वाला, असहनशील से सहनशील, अमानव से मानव तथा अज्ञानी से ज्ञानी श्रेष्ठ है। जो दूसरे की गाली सुन कर भी बदले में उसे गाली नहीं देता, उस क्षमाशील मनुष्य का दबा हुआ क्रोध ही गाली देने वाले को भस्म कर सकता है और उसके पुण्य को भी ले लेता है। दूसरे के मुंह से अपने लिये कड़वी बात सुनकर भी जो उसके प्रति कठोर या अप्रिय कुछ भी नहीं कहता तथा किसी की मार खाकर भी धैर्य के कारण बदले में न तो उसे मारता है और न उसकी बुराई ही चाहता है, उस महात्मा से मिलने के लिये देवता भी सदा लालायित रहते हैं। पाप करने वाला अपराधी अवस्था में अपने से वड़ा हो या बराबर, उसके द्वारा अपमानित होकर, मार खाकर और गाली सुनकर भी उसे क्षमा ही कर देता है। ऐसा करने वाला पुरुष परम सिद्धि को प्राप्त करता है।

यद्यपि मैं सब प्रकार से परिपूर्ण हूँ (मुझे कुछ जानना या पाना बाकी नहीं है) तो भी श्रेष्ठ पुरुषों की उपासना (सत्संग) करता हूँ। मुझ पर न तृष्णा का जोर चलता है, न क्रोध का। मैं लोभ वश धर्म का अतिक्रमण नहीं करता और न विषयों की इच्छा से ही कहीं आता-जाता हूँ। कोई

मुझे शाप दे दे तो भी मैं उसे शाप नहीं देता, मैं इन्द्रिय संयम को ही मोक्ष का द्वार मानता हूँ। इस समय तुम लोगों को एक बहुत गुप्त बात बता रहा हूँ! सुनो, 'मनुष्य योनि से बढ़कर दूसरी कोई उत्तम योनि नहीं है। जिस प्रकार चन्द्रमा बादलों के आवरण से अलग होकर प्रकाशमान दिखाई देता है, उसी प्रकार पापों से मुक्त होकर शुद्ध चित्त हुआ धीर पुरुष धैर्य पूर्वक काल की प्रतीक्षा करता रहे, इससे वह सिद्धि को प्राप्त होता है।

जो अपने मन को वश में करके आधार-स्तम्भ की भांति सबके आदर का पात्र होता है तथा जिसके प्रति सब लोग प्रसन्नतायुक्त मधुर वचन बोलते हैं, वह मनुष्य देव भाव को प्राप्त हो जाता है। किसी से डाह रखने वाले मनुष्य जिस तरह उसके दोषों का वर्णन करना चाहते हैं, उस तरह उसके कल्याणकारी गुणों का बखान करना नहीं चाहते। जिसकी वाणी और मन सुरक्षित होकर परमात्मा के जप तथा चिन्तन से लगे रहते हैं, वह वेदाध्ययन, तप और त्याग—इन सब के फल को पा जाता है।

इसलिए समझदार पुरुष को चाहिये कि वह कटु वचन कहने और अनादर करने वाले अज्ञानियों को उनके दोष बताकर समझाने का प्रयत्न न करे, न दूसरों को बढ़ावा दे और न अपनी हिंसा करे। विद्वान को चाहिये कि वह अपमान पाकर अमृत पीने की भांति संतुष्ट हो, क्योंकि अपमानित पुरुष तो सुख से सोता है, किन्तु अपमान करने वाले का नाश होता है। क्रोधी मनुष्य जो यज्ञ करता है, दान देता है और तपस्या अथवा हवन करता है, उन सब कर्मों के फल को यमराज हर लेते हैं। क्रोध करने वाले का सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है।

देवताओं! जो पुरुष अपने उपस्थ, उदर, दोनों हाथ और वाणी—इन चार द्वारों को पाप से बचाये रहता है, वही धर्मज्ञ है। जो सत्य, इन्द्रिय संयम सरलता, दया, धैर्य और क्षमा का विशेष सेवन करता है, स्वाध्याय में लगा रहता है, दूसरे की वस्तु नहीं लेना चाहता तथा एकान्त में निवास करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। जैसे बछड़ा अपनी माता के चारों स्तनों का पान करता है, उसी प्रकार मनुष्य को उपर्युक्त समस्त सद्‌गुणों का सेवन करना चाहिये। मेरी समझ में सत्य से बढ़कर पवित्र कुछ भी नहीं है। मैं चारों ओर घूमकर देवता और मनुष्यों स कहा करता हूँ लि जैसे जहाज समुद्र से पार होने का साधन है, उसी प्रकार सत्य ही स्वर्ग में पहुंचने की सीढ़ी है।

पुरुष जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसे मनुष्यों का संग करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है। जैसे सफेद कपड़े को जिस

रंग में रंगा जाये वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य भी साधु, असाधु, तपस्वी या चोर जिस किसी की संगति करता है, वह भी वैसा ही हो जाता है। देवता लोग सत्पुरुषों का संग करते हैं—उन्हीं की बातें सुनते हैं, इसीलिए वे मनुष्यों के क्षणभंगुर भागों की ओर देखने भी नहीं जाते। जो विषयों के बढ़ने-घटने वाले स्वरूप को ठीक-ठीक जानता है, उसकी समानता न चंद्रमा कर सकता है, न वायु। जो दोषों का परित्याग करके हृदयान्तवर्ती परमात्मा के ध्यान में स्थित रहता है, वही सत्पुरुषों के मार्ग पर चलने वाला है।

उसी के साथ देवता प्रेम करते हैं। जो सदा पेट पालने और उपस्थ-इन्द्रिय के भोग भोगने में ही लगे रहते हैं तथा जो चोरी करने और कठोर वाणी बोलने वाले हैं वे यदि (प्रायश्चित आदि के द्वारा) उक्त कर्मों के दोष से छूट भी जायें तो भी देवता लोग उन्हें पहचान कर दूर से ही त्याग देते हैं। सत्वगुण से रहित और सबकुछ भक्षण करनेवाले पापाचारी मनुष्य देवताओं को संतुष्ट नहीं कर सकते। देवता तो सत्यवादी, कृतज्ञ और धर्मपरायण पुरुषों के ही साथ प्रेम करते हैं। बोलने से न बोलना ही अच्छा है। किन्तु यदि बोलना ही पड़े तो सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता हैं, धर्मयुक्त बात कहना तीसरी और प्रिय बोलना चौथी विशेषता है।

साध्यों ने पूछा—'हंस ! इस लोक को किसने आवृत कर रखा है ? क्यों इसका स्वरूप प्रकाशित नहीं होता ? मनुष्य किस कारण से मित्रों का त्याग करता है ? और क्यों वह स्वर्ग में जाने नहीं पाता ?

हंस ने कहा—देवताओं ! इस लोक को अज्ञान ने आवृत कर रखा है। परस्पर डाह के कारण इसका स्वरूप प्रकाशित नहीं होता। मनुष्य लोभवश मित्रों का त्याग करता है और आसक्ति के कारण वह स्वर्ग नहीं जाने पाता।

साध्यों ने पूछा—'ब्राह्मणों में ऐसा कौन है, जो एकमात्र परम सुखी है ? वह कौन है जो बहुतों के साथ रह कर भी मौन रहता है ? कौन दुर्बल होकर भी बलवान है ? और कौन किसी के साथ भी कलह नहीं करता ?'

हंस ने कहा—'ब्राह्मणों में जो ज्ञानी है, वही एकमात्र सुखी है। ज्ञानी ही बहुतों के साथ रहकर भी मौन रहता है। वही दुबल होकर भी बलवान और वही किसी के साथ कलह नहीं करता।

साध्यों ने पूछा—'ब्राह्मणों में देवत्व क्या है ? साधुता क्या है ? तथा उनमें असाधुता और मनुष्यता क्या है ?

हंस ने कहा—'ब्राह्मणों में वेद-शास्त्रों का अध्ययन ही देवत्व है, व्रतों का पालन करना उसमें साधुता है, दूसरों की निन्दा करना असाधुता है और मृत्यु को पाप्त होना उनमें मनुष्यता है।

भीष्म जी कहते हैं 'युधिष्ठिर! इस प्रकार यह जो साध्यों का हंस के साथ संवाद हुआ था, उसका मैंने तुमसे वर्णन किया। यह शरीर ही कर्मों की योनि है और सद्भाव ही सत्य वस्तु है।

यह कथा महाभारत में राजा युधिष्ठिर तथा पितामह भीष्मजी के सम्वाद को पढ़कर भी मन में अगर सद्भावना बरतने की इच्छा न हो तथा सत्य के प्रति विवेक जागृत न हो तो उसे मनुष्य का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। मनुष्य को अपने जीवन में अच्छी बातों को अपने व्यवहार में लाना ही जीवन की श्रेष्ठता है।

नवजीवन, साप्ताहिक, दिसम्बर १९७८

मानसिक प्रवृत्तियाँ और हमारा स्वास्थ्य

महान् विचारक स्वामी भास्करानन्द ने कहा है कि हमारे मन एवं शरीर का पारस्परिक सम्बन्ध वैसा ही है, जैसा अश्व एवम् उसके द्वारा खींचे जाने वाले रथ का होता है। जिस प्रकार अश्व के विभिन्न गतियों एवं चालों का प्रभाव रथ के विविध अंगों पर पड़ता है, उसी प्रकार मन की गतियों का प्रभाव भी शरीर पर पड़ता है। पाश्चात्य प्राकृतिक चिकित्सक जेम्स हांक ने भी प्रकारान्तर से उसी तथ्य का समर्थन करते हुए मन को मोटर का इंजन एवं शरीर को उसका बॉडी माना है। 'स्वस्थ' शब्द का अर्थ ही अपने में स्थित रहना है।

मन एवं शरीर का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि जिस प्रकार शारीरिक व्याधियां मन एवं मस्तिष्क को प्रभावित करती है। उसी प्रकार मन की विकृतियाँ भी शरीर को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए यदि शरीर के किसी अंग में विशेषकर सिर में पीड़ा होनी है, तो मन अर्थात् मिजाज चिड़चिड़ा हो जाता है। यही नहीं हम दैनिक जीवन में नित्य देखते हैं कि भय से शरीर कांपने लगता है। चहरा पीला पड़ जाता है। हर्ष के

क्षणों में दिल की धड़कनें बढ़ जाती हैं और उत्तेजना में रोमांच हो जाता है। छोटे बालक तो अक्सर अत्यधिक वाद-विवाद हो जाता है, तो क्रोध के साथ-साथ व्यक्ति वेहोश भी हो जाता है और लिखते समय अक्षर भी विकृत हो जाते हैं।

मिलने वाले वन्धु जव भी मुझसे पूछते हैं कि आपका स्वास्थ्य कैसा है, मेरा उत्तर वरावर यही रहत है, "आप स्वास्थ्य की वात न पूछ कर मन की बात पूछिये कि मन कैसा ?" प्राकृतिक एवं होम्योपैथिक चिकित्सा पद्धति में भी रोग की चिकित्सा में पहले रोगी की मानसिक स्थिति की जाँच कर ली जाती है और समस्त मनःस्थिति जान लेने पर ही चिकित्सा की जाती है। लेकिन आज के बहु-प्रचिलित चिकित्सा-प्रणाली एलोपैथी में डाक्टर केवल अपनी बुद्धि के वल पर हृदय, पीठ, आँख, जीभ आदि की जांच करके निर्णय करते हैं और रक्त, थूक, मल एवं मूत्र की परीक्षा के बाद रिपोर्ट मिलने पर नुस्खे लिख देते हैं। यदि लिखी हुई दवाओं में से वाजार में कोई सुलभ न हुई, तो दूसरी दवा लिख दी जाती है ! दवा रोगी पर असर हो या नहीं, इसकी जिम्मेदारी डाक्टर पर नहीं है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड में मानसिक रोगों एवं शारीरिक व्याधियों का अत्यन्त सूक्ष्म एवं पूर्ण वैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया है। अभी हाल ही में मैंने सुयोग्य चिकित्सक डाक्टर पद्म सिंघवी का विचार इसी विचारधारा पर पढ़ा। उन्होंने अपने गम्भीर चिन्तन और अनुभवों से लोकहित की वात अत्यन्त सरलता से कही है। आज के इस तनाव-भरे वातावरण में स्वस्थ रहने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने को तनावों एवं कुण्ठाओं से मुक्त रखें और रंचमात्र भी विकार आने पर मन की विकृति छिपाएं नहीं। कारण, छिपाने से कुण्ठा और कुण्ठा से तनाव पैदा होता है। तनाव ही दिल की बीमारी का सशक्त कारण है। आज ऐसी विचारधारा के प्रचार एवं प्रसार की अत्यन्त आवश्यकता है। हमारे संतुलित स्वास्थ्य का रहस्य हमारा संतुलित मन ही है।

मानसिक शारीरिक प्रक्रियाओं को अलग-अलग मानना भूल है। जैसे हाथ व पांव शरीर के अभिन्न अंग हैं, उसी तरह दिमाग भी बहुत महत्वपूर्ण अंग है। काफी हद तक शारीरिक व्याधियाँ दिमाग को प्रभावित करती हैं और मानसिक विकार भी शारीरिक रोग के रुप में प्रकट होते हैं। जैसे खुशी में दिल की धड़कन बढ़ जाती है परेशान हो तो पसीना आता है, उत्तेजित हो तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। डरे हुए व्यक्ति की धड़कन बढ़ने के साथ उसका मुँह सूख जाता है तथा पेशाब की शिकायत हो जाती है। इसी

तरह जैसे बदहजमी होने पर कुछ भी करने को दिल नहीं करता, दर्द से आप चिड़चिड़े हो जाते हैं, आदि। इसीलिए आवश्यक हो जाता है कि हम हर बीमारी को समझने व उपचार करने से पहले इन दोनों पहलुओं को ध्यान में रखें।

बहुत-सी ऐसी बीमारियाँ हैं, जिनमें दिमागी हालत का कोई असर नहीं पड़ता। जैसे फोड़ा हो जाना, एपैण्डिक्स व अन्य संक्रामक रोग। परन्तु काफी रोग ऐसे होते हैं, जिनके विकास तथा उपचार में रोगी की मानसिक स्थिति काफ़ी हद तक अपना प्रभाव डालती है। जैसे दमा, पैप्टिक अल्सर, आंत्रशोध, रक्तचाप का बढ़ जाना, कुछ चर्मरोग आदि। इसलिए सिर्फ रोग का इलाज करने के बजाय रोगी का इलाज किया जाए, तो फायदा अधिक होता है।

बीमारी का मानसिक व्यक्तित्व—

ऐसा समझा जाता है कि कुछ प्राकृतिक व पुश्तैनी कारणों से तन्तु जन्म से ही कमजोर होते हैं और मानसिक तनाव बढ़ने पर रोगग्रस्त हो जाते हैं।

हर व्यक्ति का मानसिक संतुलन अलग-अलग होता है। कुछ व्यक्ति साधारण-सा दबाव भी बर्दाश्त नहीं कर पाते और कुछ असाधारण रूप से इन उतार-चढ़ावों को सहन कर जाते हैं। इससे एक तरह का विशेष व्यक्तित्व पैदा हो जाता है और ये लोग उन रोगों के शिकार ज़्यादा व जल्दी होते हैं। जैसे पैप्टिक अल्सर वालों का व्यक्तित्व कोरोनरी धमनी-रोग जैसे दिल के दौरे वाले मरीज़ों के व्यक्तित्व से भिन्न होता है।

आधे से भी अधिक त्वचा-रोगों के पीछे मानसिक स्थिति का स्पष्ट प्रभाव देखा गया है। भावनाओं के हेर-फेर चमड़ी के माध्यम से बखूबी दिखाई पड़ते हैं। जैसे डर में पीला पड़ना, भावुक होने पर ललाई आना, गुस्से में पसीना आना आदि। ये सभी लक्षण अस्थायी होते हैं, मगर जब मानसिक अशांति ज़्यादा व बार-बार होती है, तो ये ही बीमारी का रूप धारण कर लेते हैं।

कई लोगों को ज़रूरत से ज़्यादा खुजली होती है, जिसका कोई ठोस कारण नज़र नहीं आता। कइयों की चमड़ी में सुबह के समय ऐसे विकार नज़र आते हैं, जो रात में ज़्यादा खुजलाने की वजह से हो जाते हैं। यह बीमारी कभी कम और कभी ज़्यादा हो जाती है व दिन में ऐसा कई बार होता है। कईयों में एक खास समय पर ही लक्षण पैदा होते हैं। दवाई बदलने से या जगह बदलने से कइयों की बीमारी ठीक हो जाती है। इस तरह के अस्थिर लक्षणों वाले त्वचा-रोगों में मानसिक स्थिति को काफी

महत्त्व दिया गया है। इन सब के आधार पर रोगों की मानसिक अवस्था की तह तक जाने पर रोग निदान व समाधान में बड़ा योग मिलता है।

कई गृहिणियों को सफाई की सनक होती है। वे दिन में बारबार साबुन से हाथ धोते रहने की वजह से साबुन-चर्मरोग का शिकार हो जाती हैं। इसी तरह डार्मेटाइटिस आर्टीफ़ैक्टा मानसिक विकार के कारण होता है, जिसमें ज्यादा खुजलाने से दाने-से हो जाते हैं। अगर इसमें प्रभावित अंगों को ढक दिया जाये, तो वे ठीक हो जाते हैं। इसी तरह से बच्चों में ट्राइकोटिलोमोनिया, लाइकेन सिंप्लेक्स, पांफोलिक्स, यूमुलर एकज़ीमा आदि में मानसिक अशांति का हाथ रहता है। पसीना ज़्यादा आना, खुजली, सोरिएसिस आदि इसके उदाहरण हैं।

दमा यों तो श्वास-नलियों के सिकुड़ने से हो जाता है और उसमें सांस लेने में तकलीफ़ होती है, मगर इसमें भी दिमागी हालत का गहरा असर पड़ता है। यह रोग पैत्रिक होता है। प्रयोगशाला में रोगी के बारे में जांच करने से पता चलता है कि कई रोगियों में बीमारी तो कम होती हैं, पर लक्षण कई गुणा ज़्यादा होते हैं। इसी तरह कइयों में गम्भीर अवस्था होने पर भी लक्षण बहुत कम प्रगट होते हैं। जिनमें ज्यादा लक्षण दिखते हैं, उनमें उनकी मानसिक स्थिति का काफी प्रभाव रहता है, जैसे बच्चे स्कूल से छुट्टी लेने के लिये ऐसा करते हैं, या फिर लोगों का ध्यान आकर्षित व सहानुभूति अर्जित करने के लिये ऐसा करते हैं।

कुछ रोगी ऐसे भी होते हैं, जो दमे की परवाह न करते हुए बहुत कम लक्षण प्रकट करते हैं। ऐसी अवस्था खतरनाक साबित हो सकती है। इन लोगों की बातों को ठीक न मानते हुए इनका पूरा इलाज करना चाहिये।

इसी तरह दिल के दौरे में भी मानसिक स्थिति का स्पष्ट प्रभाव देखा गया है। एक खास तरह के व्यक्तित्व वाले लोग, जो कि बहुत महत्त्वाकांक्षी होते हैं तथा जिनमें हर क्षण कुछ करने व आगे बढ़ने की लगन होती है, इस बीमारी के ज़्यादा शिकार होते हैं। वे लोग ज़रूरत से ज्यादा ज़िम्मेदारियाँ संभाले रहते हैं, ज़ोर से बोलने के आदी होते हैं, गुस्सा भी ज़्यादा करते हैं तेज़ रफ्तार वाली जिंदगी बसर करते हैं। गम्भीर व आकस्मिक आघातों से प्रायः दिल का दौड़ा पड़ता है।

जब भी कोई गुस्से में होता है, तो उसका रक्तचाप का बढ़ जाता है, लड़ाई के समय सैनिकों में रक्तचाप का बढ़ जाना एक स्वाभाविक बात है। जब लड़ाई बन्द हो जाती है, तो इनका रक्तचाप सामान्य हो जाता है। शांत,

सुरक्षित व सुरम्य वातावरण में रहने वाले लोगों को यह बीमारी ज़्यादा नहीं होती। जिन लोगों में बार-बार या बहुत समय तक मानसिक उथल-पुथल रहती है, उनकी धमनियों में स्थायी विकार हो जाते हैं, जिससे कि रक्तचाप बढ़ जाता है। भावनाओं तथा रक्तचाप में एक गहरा तथा पेचीदा सम्बन्ध है।

कमजोरी, थकान, सिरदर्द आदि ऐसे सामान्य लक्षण हैं, जिनका हर व्यक्ति कभी न कभी शिकार होता ही है। इनकी जड़ में भी दिमागी हालत का भी काफी प्रभाव देखा गया है।

पैप्टिक अल्सर के रोगी का मानसिक स्थिति से गहरा सम्बन्ध होता है। इसमें भी आमाशय अल्सर पर दिमागी हालत का ज्यादा असर पड़ता है। कई बार असाधारण मानसिक तनाव से मरने वाले लोगों की शव-परीक्षा (पोस्टमार्टम) में अमाशय में अनगिनत छोटे-छोटे घाव पाये गये हैं। ये स्पष्टतया मानिसक कारणों से होते हैं। अनुसंधान-कर्ताओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि अमाशय हमारे दिमाग में होने वाली प्रक्रियाओं का प्रतिबिम्ब है। जैसे गुस्से में आमाशय का रक्तप्रवाह बढ़ जाता है तथा भय में कम हो जाता है, आदि।

जिस तरह दिल के दौरे का एक खास व्यक्तित्व है, उसी तरह इस बीमारी को भी हम एक खास किस्म के लोगों में ही ज़्यादा पाते हैं। जो भावुक होते हैं, गुस्सैल व चिड़चिड़े होते हैं और जो स्वयं को वातावरण के अनुकूल बनाने में असमर्थ होते हैं, अपने अन्दर दबाव महसूस करते हैं, उन्हें यह बीमारी ज़्यादा होती है।

यह सच है कि इस बीमारी में शल्य-चिकित्सा का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। मगर कभी-कभी ऑपरेशन के बाद भी लक्षण बरकरार रहते हैं। इसका कारण परेशानियाँ होती हैं, जिनके ठीक होने से ये लक्षण भी अधिकांश गायब हो जाते हैं।

उत्तेजना और दौरे—

दिमाग का पाचन-क्रिया से उत्पन्न होने वाले विकारों से अटूट सम्बन्ध है। बच्चे को अगर ठीक ढंग से व ठीक समय पर दूध न मिले, तो माँ से उसके सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं। एनोरैक्सिया नवोसा, जिसमें भूख बिलकुल कम लगती है, माहवारी बंद हो जाती है तथा वजन कम हो जाता है, स्पष्टतया दिमागी हालत से सम्बन्धित है। मोटापा, जो कि सम्पन्न समाज का एक अंग बन चुका है, एक मानसिक अभिशाप है। हँसमुख, चिन्तामुक्त व शांत व्यक्ति ज़्यादातर मोटे होते हैं। खाना ज़्यादा खाने के साथ-साथ ये

सब बातें भी मोटापा बढ़ाने में सहायक होती हैं। कुछ मानसिक परिस्थितियों में कुछ व्यक्ति अधिक खाते हैं। इसके अलावा स्वाद रुचि आदि भी ज़्यादा खाने को प्रोत्साहन देते हैं।

कमर के दर्द, गठिया आदि में भी मानसिक स्थिति काफी हद तक ज़िम्मेदार है। मिरगी का दौरा एक दिमाग़ी बीमारी है। इसलिये इसमें मानसिक कारणों का प्रभाव स्वाभाविक है। कई बार सहानुभूति प्राप्त करने के लिये या अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये या किसी अवांछनीय परिस्थिति से बचने के लिये यह बीमारी स्वतः ही पैदा हो जाती है। कई तरह की उत्तेजनाओं से खास किस्म के दौरे पड़ते हैं। जैसे रोशनी से होने वाली मिरगी में टैलीविज़न का काफ़ी हाथ है। इससे बच्चों में यह दौरा पड़ता है। इस तरह के दौरों में खाली दवाइयों से काम नहीं चलता। ऐसे में मानसिक स्थिति को सुधारना अति-आवश्यक है। कई लोगों को संगीत सुनने से दौरा पड़ जाता है। भावनाओं का उतार-चढ़ाव, थकावट, मूड का बदलना, दिमागी काम आदि मानसिक स्थितियाँ हैं, जिनसे दौरा पड़ सकता है।

इस तरह यह एक बहुत उचित बात होगी, अगर हम रोग में उपचार के साथ-साथ रोगी की मानसिक स्थिति का भी अध्ययन करें और उसे संतुलित रखने का प्रयास करें। इससे रोगी को ठीक होने में सहायता मिलेगी। अगर इसका ख्याल न रखा जाए, तो कई बार रोग का इलाज होने पर भी मरीज़ स्वस्थ अनुभव नहीं करता।

विश्व ज्योति, अंक फरवरी १९७९

प्रकृति से स्वास्थ्य का सम्बन्ध

मेरी उम्र ८-९ वर्ष की थी तभी से मैं बराबर कुछ न कुछ शिकायतों का शिकार बना रहता था। कभी सर दर्द, कभी खून की खराबी, बहुत सी दवायें ली, कविराजी, एलोपैथिक तथा होमियोपैथिक इसके अलावा और कई इलाज कराये गये पर स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा। कुछ वर्षों के बाद जब प्राकृतिक चिकित्सा की बात सामने आई और व्यायाम तथा भोजन में सुधार हुआ तभी से बराबर स्वास्थ्य ठीक से रहने लगा।

इसलिये पिछले ७०-७५ वर्ष के अनुभव से यह स्वास्थ्य सम्बन्धी विचार पाठकों के सामने उपस्थित किया है। इसके पढ़ने से जरूर समझने वाले को अगर ठीक समझ कर कार्य में लायेंगे तो निश्चय ही स्वास्थ्य अच्छा बना रहेगा तथा मन भी खुश रहेगा।

इस युग में जिस तेजी से चिकित्सकों और उनके प्रतिभा-प्रयास से नये-नये अनुसंधानों से नयी-नयी दवाओं की बाढ़ आयी है, उसे लक्ष्य करने के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि, इन दोनों प्रकार की बाढ़ों से भी अधिक बाढ़ आयी है रोगों, रोगों के नामों, नाना परेशानियों और जीवन के प्रति निराशा के भावों में। सचमुच हमारा आज की जीवन अत्यन्त संशयशील हो उठा है।

अतएव साफ जाहिर है कि, चिकित्सक [डाक्टर वैद्य-हकीमादि] और उनकी दवाइयाँ किसी भी बीमारी का सही इलाज नहीं है। अगर इनसे कोई रोग हटा भी, तो तुरन्त ही या कुछ आगे-पीछे कोई नया मर्ज मरीज को धर-दबोचता है। तब चिन्ता होती है, निरोग होने के लिये सही उपाय ढूँढ़ने की। प्रत्येक स्वास्थ्य-चिन्तक इसी खोज में व्यस्त है।

किन्तु, हम अनुभव से देखते हैं कि, अगर मन को संतुलित रखा जाय, धीरज के काम लिया जाय और प्रकृति के अनुशासन में रहा जाय, तो सुख-सुविधा, शान्ति और पूर्ण उन्नति की राह सहज ही मिल जाय।

दैहिक हो या मानसिक—दोनों प्रकार की—निरोगता प्रकृति के ठीक-ठीक अनुशासन में रहने से ही प्राप्त होती है। आज हम प्रकृति को अमान्य करके सामाजिक, आर्थिक और दैहिक स्वास्थ्य-लाभ का झूठा विश्वास पोषण कर रहे हैं। हम जीवन की प्रत्येक दिशा में उन्नति के लिये उतावले हुए हैं। हम भूल जा रहे हैं कि, संसार हमें गिराना चाहता है। वह हमें कमजोर बनाये रख कर ही अपना स्वार्थ साध सकता है। इसीलिए, वह प्रलोभनों की ऐसी भूमिका रचता है, जिसमें हम सहज ही फँस जाते हैं। ऐसा वाता-

वरण हमें प्रकृति के अनुशासन से वाहर खींच लेते हैं। हम वहक जाते हैं और तन-मन, धन तीनों को वर्बाद करके दुःखों को भोगने को विवश होते हैं।

मनुष्य कमजोर होने पर ही दूसरों का शिकार वनता है। स्वार्थी दुनियाँ जैसे चाहती है, उसे नचाती है। वह दुःख भोगता है, रोता है। किन्तु अपने निस्तार के लिए न साहस पाता है, न उपाय। स्वास्थ्य की दयनीय दशा का ऐसा ही परिणाम होता है।

रूस में एक किसान जिसकी उम्र १३० वर्ष की थी मास्को में ३० मील अपने गाँव से पैदल चल कर आया—अपने स्वाथ्य की परीक्षा कराने के लिये जव मास्को के बड़े डाक्टर ने अच्छी तरह से उसकी परीक्षा कर वतलाया आपके स्वास्थ्य में कोई कमी नज़र नहीं आती आप सव प्रकार से स्वस्थ्य है।

फिर डाक्टर ने प्रश्न किया आपका स्वास्थ्य ऐसा रखने का आपको कौन सा प्रयोग करना पड़ता है ? उस किसान ने उत्तर दिया-डाक्टर महोदय आप मेरा स्वास्थ्य देख कर भी न पहचान सके, मैं किसान हूं, खेत में सारे दिन काम करता हूँ मेरे वहुत से वेटे, पोते तथा उसके भी वेटे हैं। मैंने ३० मील पैदल चल कर यहाँ मास्को आया हूँ इसी से मेरा स्वास्थ्य ठीक से चल रहा है।

महाभारत में एक श्लोक है उसका अर्थ है:—पहला सुख निरोग काया। बीमारियाँ कोई बाहर से नहीं आती अपने निज के अज्ञान के कारण होती हैं आप वाजार में अपने घर का पैसा खर्च कर बीमारी खरीदते हैं केवल जीभ के स्वाद के लिये। वाजार में गये जैसी तैसी चीजें खरीद कर खाने वाले लोग ही ज्यादातर बीमारियाँ भोगते हैं। घर का पैसा खर्च करते हैं साथ में बीमारी भी लेकर आते हैं। घर से भी हमेशा स्वाद को देकर जो चीजें बनवा कर खाते हैं जैसे ही स्वाद जीभ को लगेगा जीभ और ज्यादा माँग करेगी उसी चीज को खाने की उसका भी परिणाम भोगना पड़ता है।

प्राकृतिक चिकित्सा का यह महत्वपूर्ण साधारण परिचय है। इसलिये प्रकृति की महिमा भूलना ठीक नहीं।

प्रकृति के मूल सिद्धांतों और आदेशों के प्रति जिनका ध्यान है, वे वहुत ही कम रोग-ग्रस्त होते हैं। रोग तो उन्हें घर दवाता है जो प्रकृति को अमान्य करते हैं। जिनके पास अपार धन है, वे सर-दर्द होते ही कोई बड़ा डाक्टर खोजने लगते हैं और डाक्टर इस तरह के अति साधारण रोग के सहारे उस धनी घर में प्रविष्ट होकर उसके धन और स्वास्थ्य का श्राद्ध करने का पूरा मोका पा जाता है।

अतएव, स्वस्थ्य रहने, के लिये ही मैं अपना अनुभव जाहिर करता हूँ। मेरा तर्जुबा है कि, रोजाना व्यायाम करने से, इतना व्यायाम करने से कि, देह सहन कर ले, तन्दुरुस्त रहा जा सकता है। यह स्वस्थ्य रहने की पहली शर्त है, भरपूर नींद। अर्थात व्यायाम, खान-पान और नींद पूरी-पूरी सही आदत बन जाय, तो स्वस्थ्य रहना आसन हो जाये।

इसीलिये सूर्योदय से पहले बिस्तरा छोड़ना और शौच-स्नानादि नित्य-कर्म नियम से नियत पर प्रतिदिन पूरा करना अत्यन्त आवश्यक और लाभकारी है। यह भी स्मरण रहे कि, व्यायाम के समय नाक-कान और आँखें साफ कपड़े से ठीक-ठीक साफ कर ले, ताकि रोज-रोज का मैल साफ हो जाय। यदि इस तरह अंग-प्रत्यंग सदा साफ रहे, तो जुकाम आदि विकार होंगे ही नहीं।

नियमित शारीरिक मेहनत की अत्यन्त जरूरत है। मेहनत की बदौलत ही हमारे मजदूर और किसान बन्धु सदा स्वस्थ रहते हैं—वे जरा-जरा में रोग-ग्रस्त नहीं होते। अतएव, यह निर्विवाद सिद्ध है कि, सदा सुखी, कर्मी और दीर्घजीवी होने के लिए हमें प्रकृति के अनुशासन में ऊपर के कतिपय नियम पालन करना ही चाहिये। जीवन और समाज की शृंखला, सुख-शांति, मनुष्यत्व का विकास और जीवन की पूर्णता प्रकृति के अनुशासन में ही संभव है। प्रेरणा उत्साह और प्रगति की यही कुंजी है।

इसीलिए आवश्यक है कि, हम प्राकृतिक अनुसरण करें और जीवन को सुखी बनायें। स्वास्थ्य ही हमारा मनोरथ सिद्ध कर सकता है। इसी के लिये हमें प्राकृतिक नियमों का ठीक-ठीक पालन करना है। मनुष्य होकर यदि आप प्रकृति की उपेक्षा करेंगे, तों निश्चय ही वह असंतुष्ट होगी और कठोर दण्ड देगी। उसके दण्ड के अनेक रूप है। जिन्हें दैहिक और मानसिक रोग कहा जाता है। आश्चर्य तो यह है कि प्रकृति की अनन्त सृष्टि में मानव ही सर्वश्रेष्ठ है। वह इसलिए श्रेष्ठ है कि, उसमें विवेक है। विवेक के कारण ही वह अनन्त सृष्टि से नैमितिक ज्ञान संग्रह करके धन्य है। दु.ख है, इस समय उसका यह चेतनमन अवचेतन हो रहा है, अन्यथा प्रकृति के अनुसाशन में रहने वाले पशु-पक्षियों से वह बहुत कुछ सीखता। एक उदाहरण देखिये। पक्षी से आप परिचित ही हैं। वह भूख लगने पर ही आहार करता है, समय पर ही नींद लेता है और गजरदम उठता है, चह-चहाता, मानों प्रकृति की वन्दना करता है। फिर, शाम को दिन भर के अपनी रोजी कर्म से छुट्टी पाकर घोंसले को लौटता है। फिर चहचहाकर प्रकृति की स्मृति करके सुख की नींद सो जाता है। मैं पाठकों से निवेदन करूँगा कि, प्रकृति शासन में

रहने वाले पक्षी के ज्ञान की महिमा समझें और रहस्य का उद्घाटन करें। पक्षी कहाँ कब प्राण त्यागता है—यह रहस्य न गाँव वाले जानते हैं, न नगर के सभ्य। किन्तु, समय पर जीवन-लीला समाप्त वे करते ही हैं। स्वेच्छा से प्राण-विसर्जन का वे स्थान चुनते हैं। यह स्थान, वे कैसे चुनते हैं और कैसे अन्त समय में गाँव—नगर से कहीं दूर अदृश्य हो जाते हैं।

बात आश्चर्य की ही है। किन्तु, ध्यान देते ही आप रहस्य समझ जायेंगे। असल बात यह है कि, तमाम जीवन प्रकृति का शासन मान कर जीवन बिताने के सत-संकल्प से उन्हें अपने अन्त का यथार्थ बोध हो जाता है और यह बोध उन्हें मृत्यु के इच्छित स्थान-चयन का स्पष्ट संकेत देता है। यदि ज्ञानवान मनुष्य प्रकृति को मान्यता दे, विश्वास और श्रद्धा से उनके अनुशासन में रहे तो उसे भी पक्षियों की तरह ही अपने अन्त का सही पता लग जाय।

ऐसे अनेक उदाहरण प्रकृति की अनन्त-सृष्टि से उपस्थित करके मानव-मन को उसकी महिमा और शक्ति का परिचय देकर प्रकृति के मूक संकेतों के पालन करने की अनिवार्यता दिखायी जा सकती है। मनुष्य को अपने ऊपर लज्जित होना चाहिए, कि प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ और प्रिय संतान होकर भी वह पशु-पक्षियों से भी कहीं अधिक गया-गुजरा बना जा रहा है।

सिवक सर्विस न्यूज बुलेटिन, कानपुर, नवम्बर १९७९

•

काश कोई भगवान नृसिंह हो !

एक पाश्चात्य विचारक ने 'मिरर' में एक लेख लिखा था-भारत को नष्ट करने के लिये किसी अन्य देश को आक्रमण करने की जरूरत नहीं है। स्वयं भारतीय ही इस देश को नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। वे सब आपस में ही एक दूसरे को मार डालेंगे।

एक गम्भीर चिन्तक के लिये उपयुक्त विचार अटपटे लग सकते हैं, लेकिन यदि हम स्वातंत्र्योत्तर भारत की गिरती हुई नैतिकता के सन्दर्भ में इनका मूल्यांकन करें तो आज से २५ वर्ष पूर्व कहे गये ये विचार हमारे देश के भयावह भविष्य की ओर इंगित करते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात

हम भ्रष्टाचार के काले समुद्र की गहराइयों की ओर निरन्तर बढ़ते गये और आज देश का समस्त वातावरण उसमें पूरी तरह डूब गया है। चतुर्दिक इसी भ्रष्टाचार रूपी हिरण्यकशिपु का ही क्रूर ताण्डव परिलक्षित हो रहा है।

स्वतंत्रता के पूर्व हमारा एक ही लक्ष्य था, देश को आजाद बनाने का। आज स्वतंत्र हो गये हैं। अब हमारे लक्ष्य केवल पद, पैसा एवं प्रभाव वृद्धि हो गये हैं। हमें इनकी उपलब्धि होनी चाहिये, इसके लिये हमें चाहे जो भी साधन प्रयुक्त करने पड़े। जब तक भारतीय जन-मानस पर गांधीजी का प्रभाव था—उनका एक ही नारा था कि सभी लोग कम खर्च में अपना कार्य चलायें तथा दूसरों के सामने अपने को हीन न होने दें।

गांधी-युग की समाप्ति के पश्चात सत्ता एवं राष्ट्र के नेतृत्व की बाग-डोर पं० जवाहरलाल नेहरू के हाथों में आई और उनका एक ही नारा था कि भारतवासी अपने रहन-सहन का स्तर ऊंचा करें। यह स्तर बिना पैसे के उठ नहीं सकता था। अतः लोगों में हर रीति से पैसा बटोरने की प्रवृति का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था।

अंग्रेजी शासन में देश के उद्योग धंधो का क्षेत्र उपेक्षित था। बिना आज्ञा के छोटा या बड़ा कारखाना स्थापित नहीं हो सकता था। स्वतंत्र होने पर इधर आँख मूँद कर भाग-दौड़ शुरू हुई और बिना सोचे-समझे हर किसी को लाइसेन्स दिये जाने लगे। उसके परिणाम स्वरूप आयात भी अनाप-सनाप हुआ और हमारी विदेशी मुद्रा की स्थिति लड़खड़ा गयी यह स्थिति सन् १९५७-६० तक रही।

फिर सरकार ने व्यापार एवं उद्योगों के उत्पादन पर इतने प्रतिबन्ध लगा दिये कि बिना शासकीय आज्ञा के उत्पादित माल का बिकना ही बन्द हो गया। इसी स्थिति ने मूल्य वृद्धि को बढावा दिया। वस्त्र, अनाज, औषधि आदि नित्य जीवनोपयोगी वस्तुएँ भी बिना आज्ञा के दुर्लभ हो गई। इस पर जन-मानस का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। उस समय [१९६२-६३] में शायद गृहमंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा थे। उन्होंने संसद में घोषणा की कि दो वर्षों में भ्रष्टाचार समाप्त कर देंगे। अन्यथा पद त्याग कर देंगे।

संयोगवश उस समय मैं भी संसद सदस्य था। मैंने संसद में ही श्री नन्दाजी से कहा कि यदि भ्रष्टाचार समाप्त करना है, तो सभी चीजों से नियंत्रण [कन्ट्रोल] हटा लें, यही भ्रष्टाचार की सीढ़ी है। इसके साथ ही उत्पादन को बढ़ावा देना भी जरूरी है, वह चाहे सरकारी क्षेत्र से हो या निजी क्षेत्र से।

श्री नन्दाजी का उत्तर था कि कन्ट्रोल नहीं हटेगा। हमने देखा कि उनकी बात का मूल्य क्या रहा ? भ्रष्टाचार कन्ट्रोल की सीढ़ियों से चढ़कर और ऊँचाइ पर जा पहुंचा।

आज इसकी जड़ें इतनी गहराई तक पहुंच गई है कि इस विष-वृक्ष को उखाड़ना असम्भव सा लग रहा है। देशरूपी गज को भ्रष्टाचार रूपी ग्राह ने गहरे पानी में खींच लिया है। कोई युगावतार ही उसे मुक्ति दे सकता है। यह कहने या लिखने में लज्जा भी आती है तथा संकोच भी होता है कि देश की बागडोर जिनके हाथों में है, उनके काले पक्ष सामने आते रहते हैं। देश आदर्श विहीन हो गया है। मंत्रियों के खर्च दिन प्रति दिन सुरसा के मुख की भांति बढ़ रहे हैं। लाखों-करोड़ों का व्यय चुनाव में, फिर अदालतों में तथा विदेश यात्रा में होता है। यह सब आता कहाँ से है।

अभी मैंने वाराणसी के एक समाचार-पत्र [साप्ताहिक] में एक सुधी लेखक के सुलझे हुए विचार पढ़े। मेरा अपना भी अनुभव है। जब भ्रष्टाचार मिटाने वाले ही भ्रष्ट हों, उनको संचालित करने वाली अफसरशाही मशीनरी भ्रष्ट हो तो यह कैसे दूर हो सकता है ? आज की स्थिति यह है कि ईमानदार वही मिलेगा, जिसकी चोरी करने का मौका नहीं मिलता। जिस क्षेत्र में भी नौकरशाही की जितनी लम्बी कतारें होती हैं, वहाँ उतना ही भ्रष्टाचार है। किसी क्षेत्र में भी नियंत्रण करने के लिये किसी नये विभाग की स्थापना का अर्थ भ्रष्टाचार के एक और वृक्ष का बीजारोपण है। अजीब तमाशा चल रहा है। सभी चोर-चोर का शोर भी मचा रहे हैं और अपनी जेबें भी भर रहे हैं। चोरों की भीड़ में चोर को खोज पाना क्या आसान है ?

अपनी सफलता एवं भ्रष्टता को बचाने-छिपाने के लिये सरकार के पास एक ही उपाय है कि व्यवसायी वर्ग भ्रष्ट है। लेकिन व्यवसाय पर कितने सरकारी विभागों का नियंत्रण है, इसकी एक अंतहीन सूची है। हर अधिकारी का जीवन स्तर ऊँचा ही नहीं, विलासिता पूर्ण है। इसको यथा-वत रखने के लिये पैसा चाहिये। तब वह अधिकारी पैसा आने के कुछ अपने पेटेन्ट नुस्खे खोजता है, पर व्यवसायी पर गृद्ध दृष्टि रखने वाले अधिकारी से मुक्ति केवल उसी के बल पर मिलती है। कुछ विशेष क्षेत्रों में तो बिना "जजिया" दिये व्यवसायी रह ही नहीं सकता।

राजस्थान के एक मुख्यमंत्री ने तो अपने शासनकाल में काफी जमीन अपने रिश्तेदारों, मित्रों के नाम से कम पैसों में हथिया ली थी ? फिर वह जमीन अच्छे दामों में बेची गई ! यह तो एक उदाहरण है। अपनी आय से कई गुना अधिक सम्पत्ति के स्वामी सहकारी अधिकारी कहीं पत्नी के नाम

से, कहीं भाई के नाम से तथा कहीं अन्य समीप के रिश्तेदार के नाम से संग्रहीत करते हैं तथा कानूनी अड़चनों से बचे रहते हैं।

जिन मंत्रियों के द्वारा कानून बनाये जाते हैं, वे भी कई भ्रष्ट हैं और कानून को लागू करने वाले भी भ्रष्ट हैं। सभी पैसे की ओर बेतहाशा दौड़ रहे हैं। चोर-चोर मौसेरे भाई की कहावत चरितार्थ हो रही है। सहकारी कार्यालयों में ईमानदार व्यक्ति ठुकराये जाते हैं और नौकरशाही की जेब भरने वाले बड़े-बड़े मंत्रियों के साथ बैठकर ससम्मान चाय पीते हैं।

फिर भी हमें निराश न होना चाहिये हमें वे आलोक स्थल खोजने चाहिये, जिनसे यह अंधियारा मिट सके। शासकों को पूर्ण निष्ठा के साथ इस 'बिगड़ैल नौकरशाही' की लगाम कसनी चाहिये। मंत्रियों को यह न सोचना चाहिये कि नौकरशाही के बिना उनकी कुर्सी सुरक्षित नहीं है। उन्हें इस घोड़ी को अपने इशारों पर चलाना चाहिये, अन्यथा यह घोड़ी उन्हें अपनी पीठ पर चढ़ा उधर ही ले जायेगी, जिधर उसके चरने के लिये हरा मैदान है। हरे मैदान की ओर भागने वाली घोड़ी पर सवार होने वाली पिछली सरकार की दुर्गति हमने देखी, क्या वर्तमान शासक उससे शिक्षा लेंगे ?

चाहे जो भी सरकार आये, चाहे जितने कल कारखाने, सड़कें, पुल आदि बनाये जायें, लेकिन जब तक निष्ठावान व्यक्ति का निर्माण नहीं होगा और इस नौकरशाही की घोड़ी पर सरकार दृढ़ता से सवारी नहीं कसेगी, तब तक कुछ परिणाम न निकलेंगे। हम सड़कें कारखाने, पुल सभी खा जायेंगे। सभी सर्जनाएं भ्रष्टाचार के उदर में समाकर स्वाहा हो जाएगी। देश का प्रह्लाद ठुकराया जाता रहेगा और हिरण्यकशिपु (स्वर्णप्रिय) अपनी तलवार घुमाता रहेगा। देखना है कि अभिनव नृसिंह का युगावतार कब होगा ?

'नवजीवन' साप्तहिक उदयपुर दि० २४-३-७९ ई०

क्षमा, सत्य एवं धैर्य की लोकातीत महत्ता

जिस प्रकार गंगा यमुना एवं सरस्वती के पावन संगम पर परम महिमामय तीर्थराज प्रतिष्ठित हैं, उसी भांति क्षमा, सत्य एवं धैर्य की त्रिवेणी पर ही मानवता की प्रतिष्ठा हुई है। प्राणी मात्र इन तीन लोकातीक गुणों के प्रति सृष्टि के स्वर्णिम अरुणोदय से ही अपनी रश्मि-राशि श्रद्धा समर्पित करते रहा है। जिसके हृदय स्थल में यह त्रिवेणी प्रवाहित होती है, वह दुराचार, अन्याय, अनीति, अकरुणा, द्वेश, अमर्ष, परनिन्दा आदि गर्हित भावनाओं से कभी भी असम्पृक्त नहीं होता है और उसकी जीवन धारा सुन्दरता एवं पवित्रता के पावन कूलों से होकर ही प्रवाहमान होती है। मानव पर ईश्वरीय गुणों को समाहित करने की शक्तिमयी प्रक्रिया भी यहीं से प्रारंभ हो जाती है। मनुष्य भगवत तत्व को प्राप्त करके लोक-वन्दना का अधिकारी बन जाता है और इसके विपरीत आचरण करने वाला मानवीय पद से पतित होकर, दानव की संज्ञा प्राप्त करता है। देवत्व एवं दानवत्व का यही रहस्य है।

हमारे आर्य ग्रन्थों में इस सत्य को उजागर करने वाले एक नहीं सहस्राधिक प्रमाणों का अत्यन्त गरिमा के साथ उल्लेख है। भक्त प्रह्लाद की सत्य-साधना, बालक ध्रुव का परम सत्य ईश्वर के प्रति अडिग विश्वास एवं धैर्य, नल-दमयन्ती का ललित आख्यान सादर एवं सोल्लास उद्घोष करते हैं कि इसी त्रिवेणी को मानस भूमि में तरंगित करके ही इन सबको परम उज्ज्वल लक्ष्यों की प्राप्ति हुई। साम्यवादी हरिश्चन्द्र का सत्यव्रत धारण एवं ऋषि माण्डव की अपूर्व क्षमा-साधना हमें निरन्तर इसी सत्य की ओर इंगित करती है। क्षमावतार माण्डव ऋषि का राजा ने भूल से शूली पर चढ़ा देने का दण्ड दिया। वे मरे नहीं और बहुत दिनों तक उसी पर चढ़े घोर यातना भोगते रहे। जब राजा को अपनी भूल ज्ञात हुई तो उसने ऋषि से क्षमादान मांगी। करुणावतार ऋषि ने बिना किसी दुर्भावना के क्षमा कर दिया और धर्मराज से इस भोग का कारण पूछा। धर्मराज ने उत्तर दिया कि आपने बचपन में एक मक्खी को सूई की नोक से छेद दिया था। ऋषि ने कहा कि आप धर्म के साक्षात स्वरूप हैं और अल्पायु में अज्ञान वश किये गये अपराध के लिये इतना कठोर दण्ड दिया। जाओ, तुम्हें मृत्युलोक में शूद्र के यहां जन्म लेना पड़ेगा। ऋषि के शाप वश ही धर्मराज को शूद्र के घर में जन्म लेना पड़ा। और वे परम नीतिज्ञ महात्मा विदुर के नाम से विख्यात हुये। लेकिन ऋषि ने राजा के प्रति क्रोध प्रकट नहीं किया। यही तपस्या एवं क्षमा की पराकाष्ठा है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम सत्य संध एवं अनन्त करुणा वरुणालय थे। पिता के वचनों की सत्यता प्रमाणित करने के लिये राज्य को भी त्याग दिया और १४ वर्षों तक लगातार वन की घोर आपदाओं को धैर्यपूर्वक सहते रहे। यही नहीं उन्होंने माता कैकई के प्रति भी रंच मात्र बुरी भावना नहीं रखी और वनवास से लौटने पर सर्वं प्रथम उन्हीं से मिलने गये। यह है धैर्य, क्षमा एवं सत्य का हीरकोज्ज्वल प्रमाण। तभी तो गोस्वामी तुलसीदास ने राम के मुख से जिस अलौकिक विजय रथ के रहस्य को प्रकट किया उसका एक चक्र धैर्य है और सत्यशील ही उसकी फहराती हुई उज्ज्वल पताका है। राम को विरथ एवं रावण को रथासीन देख कर विभीषण अधीर हो गये। इस पर राम ने कहा—

सुनहु सखा कह कृपा निधाना, जेहि जय होइ सो स्यंदन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल विवेक दम परहित घोरे, छमा कृपा समता रजु जोरे।

भगवान कृष्ण सर्व शक्ति सम्पन्न होते हुए भी सत्य, क्षमा एवं धैर्य को मूल आधार वनाकर राज्य का संचालन नाना के द्वारा करवाया और जटिल समस्याओं का भी समाधान प्रस्तुत कर सके। सत्य निष्ठ महाराज युधिष्ठिर तो धर्म के साक्षात स्वरूप ही थे। न जाने कितनी विपदाओं के बादल उन पर छाये, दुःखों की भीषण वर्षा एवं बिजलियाँ गिरी, लेकिन उन्होंने धैर्य पूर्वक सब कुछ सहा और अत्याचारी दूर्योधन को क्षमा करते हुए सत्यव्रत नहीं त्यागा।

भगवान बुद्ध तो करुणा-श्लोक थे ही। सन्त एकनाथ, स्वामी रामदास, स्वामी रामतीर्थ, परिव्राजक सन्यासी विवेकानन्द, परमहंस स्वामी रामकृष्ण, भक्त श्रेष्ठ तुलसी, सूर, कबीर, मीरा, गुरु नानक एवं अहिंसा एवं सत्य के अवतार क्षमा—पुज्य राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने मन, वचन एवं कर्म से इसी सत्य, क्षमा एवं धैर्य की त्रिवेणी को अपने जीवन के समतल पर सतत प्रवाहित किया। बड़े-बड़े दिग्विजयी योद्धा इस क्षमा एवं धैर्यमयी धरती पर जन्मे, पर इन सद्गुणों से हीन होने के कारण हिरण्यकशिपु, रावण, सहस्रबाहु, कंस, दुर्योधन आदि क्या काल प्रहार से वचे? आज उनका कोई नाम भी नहीं लेता है। इसके विपरीत महर्षि वशिष्ठ, विश्वामित्र वेदव्यास आदि इन्हीं सर्वांगिक गुणों के कारण युग पूज्य बने। उन सबके पावन चरित्र आज भी उसी भावमयी गरिमा के साथ प्रेरणा के दुग्ध स्रोत बने हुए हैं।

अधिक विस्तार में न जा कर मैं सत्य, धैर्य एवं क्षमा को प्रतिपादित करने वाले राजा युधिष्ठिर एवं महारानी द्रोपदी के पावन सम्वाद की चर्चा

करना चाहूंगा। महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित वनवास का घोर यातना अत्यन्त धैर्य पूर्वक सह रहे थे। १२ वर्ष की अवधि में उनके एवं द्रोपदी के बीच जो सम्वाद हुआ वह अवश्य ही हम सबके अन्तः मल् को दूर करने में सक्षम है। वैशम्पायनजी ने वह कथा जन्मेजय को सुनाते हुए कहा एक दिन सन्ध्या समय बनवासी पाण्डव शोक ग्रस्त होकर द्रोपदी के साथ वार्तालाप कर रहे थे। इसी प्रसंग में द्रौपदी ने कहा कि दुर्योधन सचमुच कूर एवं दुरात्मा है। हम सबको छल से जुए में जीत कर जब उसने हमें मृगाम्बर पहिना कर बनवास के लिये भेजा तब भी उसका वज्र हृदय नहीं पिघला। भरी सभा में अनेक महापुरुषों के सामने आप जैसे धर्मात्मा एवं सत्य निष्ठ को अपशब्द कहे। राज्य श्री से रहित कर दिया तब भी आप उसके प्रति क्षमा भाव ही रखते हैं। द्रोपदी जब अपने विगत वैभव व सुखों को याद करने लगी तो उसका हृदय क्षुब्ध हो गया। उसने धर्मात्मा युधिष्ठिर से कहा कि आश्चर्य की बात तो यह है कि भीमसेन जैसे महाबली, पार्थ अर्जुन जैसे धनुर्धर एवं नकुल सहदेव जैसे अप्रतिम अजेय यद्धाओं के होते हुए भी आप धैर्य धारण किये हुए हैं। आपकी सहनशीलता धन्य है। यह ठीक है, पर जो क्षत्रिय समय पर अपना क्रोध एवं तेज प्रकट नहीं करता, तो निर्बल शत्रु भी उसका तिरस्कार करने लगते हैं। शत्रुओं से क्षमा का नहीं अपने प्रताप के अनुरूप व्यवहार करना चाहिये।

द्रोपदी ने पुनः कहा—राजन ! पूर्व काल में राजा बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद से पूछा था कि क्रोध और क्षमा में उत्तम कौन है ? इस पर प्रह्लाद ने कहा कि सर्वदा न तो क्रोध उचित है और न क्षमा। क्षमा एवं क्रोध एक व्यवस्था है। जो पुरुष सर्वदा क्षमाशील रहता है उसका तिरस्कार सभी जन कटु वचन कह कर करने लगते हैं। यहीं नहीं धूर्त पुरुष क्षमाशील को दबा कर उसकी स्त्री को भी हड़प लेते हैं। स्त्रियां भी स्वेच्छा चारिणी बन जाती हैं और पतिव्रताएं भी अपने धर्म से च्युत होकर क्षमा वालों का अपकार कर डालती हैं। इसके अतिरिक्त जो कभी क्षमा नहीं करता, हमेशा क्रोध के वशीभूत होकर पात्र, अपात्र का विचार न करके सभी को त्रास देने लगता है वह मित्रों एवं स्वजनों का भी शत्रु बन जाता है। अतः ऐसे सर्वद्रोही को अपने ऐश्वर्य, स्वजनों एवं प्राणों से भी हाथ धोना पड़ता है। अतः विवेकी वही है जो समयानुसार उग्रता एवं क्षमा को धारण करता है। एक बार अपराध करने पर तो क्षमा कर देना चाहिए, लेकिन बारबार करने वालों को दण्ड अवश्य देना चाहिये। राजन् ! धृतराष्ट्र के पुत्र बारबार अपराध करते हैं और आप उन्हें क्षमा करने जाते हैं।

अधिक विस्तार में न जा कर मैं सत्य धैर्य एवं क्षमा को प्रतिपादित करने वाले राजा युधिष्ठिर एवं महरानी द्रौपदी के पावन संवाद की चर्चा करना चाहूंगा। महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित वनवास का घोर यातना अत्यन्त धैर्य पूर्वक सह रहे थे। १२ वर्ष की अवधि में उनके एवं द्रौपदी के वीच जो संवाद हुआ वह अवश्य ही हम सबके अंतः मल् को दूर करने में सक्षम है। वैशम्पायनजी न वह कथा जन्मेजय को सुनाते हुए कहा-एक दिन सन्ध्या समय वनवासी पाण्डव शोक ग्रस्त होकर द्रौपदी के साथ वार्तालाप कर रहे थे। इसी प्रसंग में द्रौपदी ने कह कि दुर्योधन सचमुच क्रूर एवं दुरात्मा है। हम सबको छल से जुए में जीतकर जब उसने हमें मृगाम्बर पहिना कर वनवास के लिए भेजा तब भी उसका वज्र हृदय नहीं पिघला। भरी सभा में अनेक महापुरुषों के सामने आप जैसे धर्मतमा एवं सत्य निष्ठ को अपशब्द कहे। राज्य श्री से रहित कर दिया तब भी आप उसके प्रति क्षमा भाव ही रखते हैं।

धर्मराज ने कहा क्रोध पर क्रोध से विजय नहीं मिलती है। क्रोधी को क्षमा से ही जीता जा सकता है। मल से कहीं मल को साफ किया जा सकता है? महात्मा कश्यप ने भी क्षमा की प्रशंसा में कहा है कि क्षमा ही बल, धर्म, सत्य, तप पवित्रता, विश्व को धारण करने वाली एवं भूत वर्तमान तथा भविष्य है। यज्ञिकों को जो लोक यज्ञ करने के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं वे क्षमाशीलों को अनायास प्राप्त होते हैं।

क्षमा ही तेजस्वियों का तेज, तपस्वियों का ब्रह्मा और सत्यवानों का सत्य है। क्षमाशील स्वयं बलवंत हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण, भीष्म पितामह, आचार्य धौम्य, विदुर, कृपाचार्य संजय एवं महात्मा वेद व्यास ने इसी सनातन सदाचार एवं धर्म के गुण बखाने हैं। मैं सत्य एवं निष्ठा से उसी क्षमा एवं दया का पालन करता हूँ।

आज हम इन सद्गुणों से दूर हो गये हैं। संसार दुःख का अपार सागर बन गया है महात्मा गांधी ने इसी सत्य के रहस्य को जाना था। इसी सत्य एवं अहिंसा के फलस्वरूप उन्होंने न जाने कितनी यातनाये भोगी पर अपने पथ से रंचमात्र भी डिगे नहीं। तभी तो वे विश्वपूज्य बने और समस्त देश उनकी एक अवाज़ पर सर्वस्व त्याग करने को सर्वदा प्रस्तुत रहता था। एक बार जब वे फिजी में सत्याग्रह कर रहे थे तो वहीं के एक सज्जन ने इतना मारा था कि वे मरणासन्न ही हो गये थे। पर वे मरे नहीं थे। कुछ दिनों के बाद जब उसको पकड़ कर वहाँ की सरकार ने मामला चलाया तो गांधीजी की ही गवाही कर उसे मुक्त कर दिया गया। उन्होंने कहा था कि उसने मस्तिष्क ठीक न होने से ही हमला किया था।

यह है आदर्श क्षमाशीलता का प्रभाव। आज एक विशेष दल के लोग कहते हैं कि स्वतंत्रता गांधीजी के द्वारा नहीं मिली, वह तो नवयुवकों ने बमों एवं हिंसा से अंग्रेजों को बाध्य कर प्राप्त की थी। हम तटस्थ होकर यदि विचार करें तो सत्य की गहराई तक पहुंच सकते हैं। क्षमा एवं सत्य गांधीजी के अमोघ अस्त्र थे। उन्हीं के प्रयोग से देश आज स्वतंत्र राष्ट्रों की पंक्ति में गौरव से विराजमान है।

क्षमा एवं धैर्य के बल पर ही पृथ्वी असंख्य वन पर्वतों, नदी, पहाड़ों आदि को अपनी छाती पर धारण किये है। करुणा के वश में ही होकर वह अपने पुत्रों के लिए अपने कोश लुटा देती है। सत्य की धुरी पर ही यह सौर मण्डल क्या आखिल ब्रह्माण्ड सधा है। सत्य, क्षमा एवं धैर्य ही मानव को देवता बनाने के अमोघ सूत्र हैं। उन्हें कभी भी किसी काल में झुठलाया नहीं जा सकता है।

राजस्थानी वीर, सितम्बर १९७९

शिष्टाचार की कसौटी पर राजनीति

नेता शब्द नेत्र' से बना है। वह राष्ट्र को सही दिशा-ज्ञान देता है। उसी के बताये गये मार्ग का अनुसरण जनता करती है और उसके आचरण को आदर्श मानकर अपने जीवन में उतारती है। नेता ही राष्ट्रीय शिष्टाचार की स्थापना करता है। अथर्ववेद के अनुसार यदि नेतृवर्ग समाजिक शिष्टाचार का पालन नहीं करता है तो राष्ट्र अमर्यादित एवं आदर्शहीन होकर पतन के गर्त्त में गिर जाता है।

इस कसौटी पर जब हम देश की वर्तमान स्थिति को परखते हैं तो वह दुःखद ही नहीं, अपितु निराशाजनक भी लगती है। शिष्टाचार का प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण मापदण्ड भाषा होती है। जनता के भाग्य विधायक बनने वाले हमारे नेता आज जिस ओछी भाषा का प्रयोग सार्वजनिक रूप से कर रहे हैं, उससे किसी भी स्वस्थ विचार वाले को हार्दिक ठेस अवश्य लगेगी।

अभी एक समाचार पत्र में मैंने पढ़ा कि केन्द्रीय सरकार के एक कैबिनेट स्तर के मंत्री महोदय ने एक सार्वजनिक सभा में किस प्रकार की अमर्यादित और अनर्गल बातें कहने का साहस किया। यह ठीक है कि किसी विशेष वर्ग में लोकप्रियता प्राप्त करने के उद्देश्य से हम दूसरे वर्ग के दोषों को उजागर करते हैं, लेकिन शिष्टता का यह भी तकाजा है कि हम अमर्यादित न हों और शालीनता को एक किनारे रखकर सस्ती और क्षणिक वाहवाही के लिए अनर्गल प्रलाप न करें।

उक्त मन्त्री महोदय के अशिष्ट भाषण से यही आभास मिलता है कि शासन के संचालन के लिए जैसी गम्भीरता, शालीनता, मर्यादा एवं शैली चाहिए उन सबसे इनका दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। जब मैं संसद सदस्य था, ये महोदय भी लोकसभा के सदस्य थे। उस समय भी ये तत्कालीन प्रधानमन्त्री के विरुद्ध बिना प्रमाण के ही अशालीन भाषा में आरोप लगाते थे। शायद उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि आदमी का सही मूल्यांकन इस बात पर किया जाता है कि वह अपने विरोध को कितनी शालीनता के साथ प्रकट करता है। वे जहाँ और जिस स्तर पर उस समय थे, उसी स्तर पर या कैबिनेट मंत्री पद के मद में उससे भी पीछे चले गये हैं।

कम से कम एक मंत्री से प्रत्येक सूझ-बूझ वाला व्यक्ति इतनी तो आशा रखता ही है कि उसमें इतनी तो क्षमता होनी ही चाहिए कि देश का अहित न कर सके। हम स्वतन्त्र हैं, हमें वाक् स्वतन्त्रता प्राप्त हैं। हम अपने विचार प्रकट कर सकते हैं। लेकिन हमें अपने पद की गरिमा एवं नैतिक शिष्टाचार का भी तो ध्यान रखना चाहिए। शब्द हमारे पास है तथा जबान भी हमारे पास है। हम किसी को अपशब्द कह सकते हैं, चोर, डाकू या लुटेरा कह सकते हैं। इससे हमारी महत्ता प्रकट नहीं होती है, बल्कि हमारे सोचने समझने के स्तर का पता चलता है। हमारी जेब में यदि खोटे सिक्के होंगे तो हम वही निकालेंगे। इसी प्रकार हमारे अन्तर में जैसे विचार होंगे, हम वही प्रकट करेंगे।

यदि कोई काला धन रखता है और गलत काम करता है तो उसका पता लगाइये, उसे पकड़ कर कानूनी कार्यवाही करिये। यह दायित्व आपका है। अनुचित कार्य करने वाले को दण्ड मिलना ही चाहिए। चोर-चोर का हल्ला मचाकर चोर नहीं पकड़ा जा सकता है। चोर भी तो यही हल्ला मचाकर बच निकलता है। यह कहाँ का तर्क है कि हम अपनी अक्षमता एवं अनुभवहीनता पर पर्दा डालने के लिए सारी अव्यवस्था का दायित्व दूसरे के ऊपर मढ़ दें।

मैं सन् १९१७ में कांग्रेस और गाँधीजी के सिद्धान्तों से सहमत हुआ और सन् १९१९ में जालियांवाला बाग के काण्ड के पश्चात् उन्हीं के विचारों के अनुसार कार्य करने लगा। कांग्रेस में कितने उतार-चढ़ाव आए। इन मंत्रीजी को शायद यह सब पता ही न हो और हो सकता है कि इनका जन्म भी न हुआ हो। इनका जन्म तो परनिन्दा के लिए ही हुआ है। इन्हें न तो व्यापार और न शासन का ही अनुभव है और न इन्होंने उपनिषद्-पुराण, महाभारत आदि नीति शास्त्रों का ही अध्ययन किया है। ये ऐसे ही तत्वों से घिरे हुए हैं जो दूसरों पर कीचड़ उछाल कर अपने को साफ-सुथरा दिखाना चाहते हैं। आप अपने ही कार्यों का मूल्यांकन करें कि इतने दिनों के शासन में आपने क्या किया? काले धन का इतिहास क्या है, यह कैसे पैदा हुआ? अनर्गल प्रलाप के अलावा आप आम जनता के सुख-दुख में कितने सहभागी बने? जनता के मंगल के लिए आपने क्या किया? विदेशी शासक भी इस सत्य से आँखें नहीं मूँदते थे। वे शासन हम पर करते थे और लक्ष्य था अपने देश को समृद्ध करना। आप तो इसी धरती पर जन्मे हैं। जब आपने कभी इतना बड़ा दायित्व सम्भाला ही नहीं, तो फिर आपसे राष्ट्र मंगल की आशा करना आकाश-कुसुम को ही प्राप्त करना है।

लेकिन जब जनता ने कुछ समय के लिए आपको दायित्व और अपना विश्वास समर्पित किया है तो इसे निभाने के लिए आपको संयमित होना ही चाहिए। शासन चलाने के लिए शैली जाननी होगी। नीति ग्रंथों का अध्ययन करना होगा।

महाभारत की समाप्ति पर जब केवल पांचों पाण्डव और विदुरजी, धृतराष्ट्र आदि ही शेष रह गये तो युधिष्ठिर को स्वजनों के संहार से आत्मग्लानि हुई। जब भीम-अर्जुन आदि ने राज्य सम्भालने की प्रार्थना की तो वे इंकार करने लगे। पश्चात्ताप की आग में वे निरन्तर जल रहे थे। तब भगवान कृष्ण ने कहा, "शरशैया पर अभी पितामह जीवित लेटे हुए हैं, जैसा वे कहें वैसा ही करना चाहिए। महाराज युधिष्ठिर में साहस नहीं था कि उनके सामने जाएँ। श्रीकृष्ण के समझाने से वे गये और पितामह ने अत्यन्त प्रेम के साथ नीति और शासन व्यवस्था चलाने के सिद्धान्त समझाए उन्हीं से युद्ध हुआ और उन्होंने ही राजनीति का उपदेश दिया।

पर लगता है कि आप तो अपने को स्वयम्भू नेता मानकर विदुर, द्रोण तथा भीष्म से भी बड़े बन गये हैं। भगवान से प्रार्थना है कि वह आपको सुबुद्धि दे ताकि आप यथार्थ समझने के योग्य बन सकें।

सन् १९४७ में उस समय के चीफ मिनिस्टर में तथा डा० विधानचन्द्र राय में मदभेद होने के कारण मीटिंग हुई। ५१ सदस्य कांग्रेस के एसेम्वली में उस समय थे। जव दोनों में मतभेद हो गया तो १ सदस्य ५१ में से स्पीकर थे, वाकी ५० में से २३ डा० राय के पक्ष में रहे। २४ मुख्यमंत्री के पक्ष में थे, ३ सदस्य हमारे मित्र थे। उस समय के मुख्यमंत्री ने कहा, 'अगर आपके मित्र ३ वोट मुझे दें तो मैं उनमें से १ को मिनिस्टर बनाऊंगा।' मुझे यह वात वहुत बुरी लगी। यह भी घूस देने को राजी हो गये। संयोगवश कुछ दिन वाद स्व० शंकरराव देव (पूना के गांधी) मेरे घर आये उन्होंने ब्लैक में काम करने वालों की वात शुरू की, मैंने कहा आपके तो अभी जो चीफ मिनिस्टर हैं वह आपके मित्र हैं, आप उन्हें मना कीजिये जो ३ वोट के वदले १ मिनिस्टर वनाने को तैयार हैं। आप कृपा कर उन्हें समझाइये, फिर ३ वोट जब डा० राय को दिये गये तो, वह मिनिस्टरी १४।। वर्ष चली और वड़े अच्छे तरीके से डा० राय ने अपने पद को इज्जत के साथ निभाया।

किसी पर दोषारोपण करने के पूर्व हमें अपना ही स्वरूप देखना चाहिए। यह पद और क्षमता स्थायी नहीं है। स्थायी होता है आदमी का कार्य, उसके सुस्पष्ट विचार। जो पद पर आसीन होता है उसे बहुत सोच समझ कर काम करने पड़ते हैं। सन् १९१९ में एक बिल लोकसभा में पास हुआ था किसी भी कम्पनी से राजनैतिक दल को धन नहीं दिया जायेगा। उसके बाद जो कुछ हुआ और हो रहा है वह सबके सामने है। क्या कभी आपने सोचा कि चुनावों में राजनैतिक दल जो असीम धन व्यय करते हैं वह कहाँ से आता है? जो एक पैसे का धन्धा नहीं करते उनके लाखों के खर्च हों। वही धन अगर नेता के पास आता है तो व्हाइट है और नहीं जाता है तो ब्लैक। आज देश के धन पर ही मंत्रियों की बड़ी फौज मौज मजे उड़ा रही है। कुछ भी बोलने के पूर्व आपको अपना हृदय अवश्य टटोल लेना चाहिए।

व्यापारी वर्ग व्यापार करता है। कम मूल्य में खरीद कर अधिक मूल्य में वेचता है। उस अधिक में ही अनेक सरकारी कर हैं, व्यापारी के परिवार में खाने पीने आदि के खर्च हैं, उस पर भी उसे कभी-कभी भारी क्षति भी उठानी पड़ती है। करों का भारी बोझ, नेताओं के छल-छद्म, सरकारी मशीनरी से काम कराने के लिए अनिवार्य रूप में घूस, फिर नुकसान। इतना सब सहने के बाद ही व्यापारी जिन्दा रह सकता है।

मुझे दुःख है कि इतने बड़े पदों पर ऐसे अनुभवहीन व्यक्ति बैठ गये, जो राजनीति में शिष्टाचार के समावेश को जानते ही नहीं। राजनीतिज्ञ के

लिए क्या शिष्टाचार जरूरी नहीं है ? आपको शासन चलाना है तो लोगों को विश्वास में लीजिए। उन्हें सही वस्तुस्थिति प्यार से समझाइये, उचित एवं शिष्ट बातें मुँह से निकालिये। आपकी हितकारी वातें सभी सुनेंगे और उनपर अमल करेंगे।

आज समस्त देश भ्रष्टाचार के दलदल में समा गया है। बिना घूस के कोई काम होता ही नहीं है। अभी पिछले दिनों एक समाचार पढ़ने को मिला कि विहार के एक मन्त्री महोदय को ही अपना बिल पास कराने के लिए एक क्लर्क को ५ रुपये देने पड़े। यह रहस्य मन्त्रीजी ने बड़े गर्व के साथ प्रकट किया। यह किसका दोष है ? इसका उत्तर यही है कि शासक वर्ग नैतिक वल से हीन हो गया है। सही आदमी मार खा रहा है और अनुचित कार्य करने वाले आनन्द से घूम रहे हैं। आप अपने दिल पर हाथ रखकर पूछिये कि इस दूषित व्यवस्था में आपका योगदान कहाँ तक है। देश के लिए, भावी पीढ़ी के विकास के लिए, पद की गरिमा के लिए और उससे भी बढ़कर अपने कल्याण के लिए शालीनता को तलाक मत दीजिये।

जीवन साहित्य, अक्तूबर १९७९

अमरता का सोपान : दुःख का गरल पान

यह निर्भ्रान्त सत्य है कि जागतिक जीवन का विशाल जाल सुख एवं दुःख के ताने वाने से निर्मित है। सुख में अपना बाह्य आकर्षण होता है, जो अपनी ऊपरी चमक दमक से साधारण जनों की दृष्टि को चकाचौंध से झिलमिला देता है और परखने का ज्ञान-भेद समाप्त हो जाता है। इसके विपरीत दुःख में बाह्य आकर्षण विलकुल नहीं होता है। वह एक कसौटी होता है जिसके स्पर्श से किसी का भी व्यक्तित्व स्वर्ण की भांति निखर कर अपने मूल्य को स्वयं घोषित कर देता है। दुःखों को अपनाने वाला हलाहलपायी भगवान शंकर की भांति लोक वंदना का अधिकारी वन कर शिव नाम से विभूषित होता है। एक में अपना आकर्षण होता है और दूसरे में व्यक्तित्व को निखारने की अपूर्व क्षमता होती है, जिसे अपना कर व्यक्ति स्वयं लोक—आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बन जाता है।

इतिहास साक्षी है कि जिन्होंने सुख के फूलों से अपनी विलासमयी शैय्याएँ सजाईं, आज वे सब विस्मृति के गहन अन्धकार में खो गये, कोई उनका नाम लेता भी नहीं है। लेकिन जिन्होंने दुःख के शूलों पर अपनी राह बनाई, जमाना उनकी प्रशस्ति में वन्दना के सुरभित सुमन समर्पित करता है। कवि वल्लभेश दिवाकर ने इस चिरन्तन रहस्य का उद्‌घाटन इन शब्दों में किया है—

जो दर्द को पियूस मान, मुस्करा के पी गये।
वे मृत्यु से डरे नहीं, मसान जा के जी गये॥
न उनका तन कफन के, तन्तुओं में बन्द हो सका।
जली चिता उठा धुँआ, मगर न अन्त हो गया॥

जब हम विश्व इतिहास के पन्नों को पलट कर देखते हैं तो यही तथ्य एक ज्योतिर्मय बिम्ब की भांति उभर कर सामने आता है कि जिन्होंने दुःखों का, वेदनाओं एवं कष्टों का हलाहल पान किया है वे ही लोक-प्रसिद्धि के सर्वोच्च कैलास पर भगवान सदाशिव की भांति विराजमान हुए हैं। दुःख की कसौटी पर जिन्होंने अपने को खरा उतारा, वेदना की घोर अग्नि में अपने को तपाया, उनका ही व्यक्तित्व कुन्दन की भाँति दीप्तिमान होकर निखरा। कोमल पुष्प अपने तन को लोहे की सुई से बिंधवाता है, तभी विजय हार बन कर पूज्य जनों, देवताओं एवं प्रेमी जनों का कण्ठहार बनता है। पाषाण का अरूपवान खण्ड जब अपने को छेनी-हथौड़ी से तिल-तिल कटवाता है तभी आराध्य की मूर्ति का स्वरूप पाता है। लकड़ी का कुरूप टुकड़ा जब खराद पर चढ़ता है तभी सुन्दर स्वरूप को प्राप्त करता है। हीरा तरासने के पश्चात ही मूल्यवान बनता है। दीपक जब प्रज्ज्वलित होता है तभी देवता की आरती के योग्य बनता है और लोक-शोक रूपी तम का हरण करता है। वेदना के बीच अखण्ड साधना के सिन्धु-मन्थन से जो अमृत निकलता है, वही साधक को अमरता प्रदान करता है।

हमारे सामने ऐसे अगणित महापुरुषों की मणिमाला है जिन्होंने अपने जीवन रूपी मोती का बेधन करवाया और न केवल अपने को ही पूजनीय बनाया बल्कि लोक जीवन को आत्म प्रकाश से जगमगा दिया। सन्त सुकरात ने घोर यातनाओं को सह कर गरल का प्याला पिया, ईसा मसीह क्रास पर लटकाए गये, सन्त सरमद ने अपने शरीर की खाल ही खिंचवा दी। वे सभी मानवता के प्रकाश स्तम्भ बने हुए हैं और सुकरात को गरल पिलाने वाले, ईसा को क्रास पर लटकाने वाले आज कहां है? कोई उनका नाम भी नहीं जानता है।

महर्षि दधीचि ने अस्थियों का दान कर दिया और महाराज शिवि ने अंग अंग कतर दिये। महाराज हरिश्चन्द्र ने सब कुछ गवाँ कर भी सत्यव्रत नहीं छोड़ा। इसी जाज्वल्यमान परम्परा में राष्ट्रपिता गांधी ने भी तीन गोलियां खा कर जीवन का अन्तिम मूल्य तक चुका दिया। राष्ट्र कवि दिनकर ने अपने काव्य रश्मिरथी में वेदना की विषम ज्वाला में अपने को जलाने वाले आत्म-बलिदानियों पर कहा है—

> दिया अस्थि देकर दधीचि ने शिवि ने अंग कतर कर।
> हरिश्चन्द्र ने कफन मांगते हुए सत्य पर अड़ कर।
> ईसा ने संसार हेतु शूली पर प्राण गँवा।
> अन्तिम मूल्य दिया गांधी ने तीन गोलियां खा कर।
> सुन अन्तिम ललकार मोल मांगते हुए जीवन की।
> सरमद ने हंस कर उतार दी त्वचा समूचे तन की।

इन आत्म व्रत धारियों की एक अनन्त कतार हंसती हुई दीप मालिका की भांति स्मृति एवं इतिहास की दीवट पर सुशोभित है। कवि दिनकर का तो यह दृढ़ विश्वास है कि—

> जहाँ कहीं है ज्योति जगत में जहाँ कहीं उजियाला।
> वहाँ खड़ा है कोई अन्तिम मूल्य चूकाने वाला।

प्रत्येक मानव के अन्दर लोक को प्रकाश दिखाने वाली अमर ज्योति उसी प्रकार छिपी है जैसे पुष्प में सुगन्ध, ईख में मधुर रस, मेंहदी में लाली और वर्तिका में प्रकाश। लेकिन जब मेंहदी अपने को पत्थर पर पिसवाती है तभी ललनाओं का सिंगार बनती है। जब ईख पेरी जाती है तभी अखण्ड रस-धारा निकलती है और जब पुष्प अपना अस्तित्व न्यौछावर कर देता है तभी मन को प्रफुल्लित करने वाली सुगन्ध प्राप्त होती है। युग बीत गये, कितनी शताब्दियां हरहराती हुई निकल गईं, भूतल का भूगोल ही नहीं इतिहास भी बदल गया। लेकिन क्या राम का प्रताप मन्द हुआ ? आज भी उनका नाम असुरत्व पर विजय का दृढ़ संकल्प प्रदान करता है। यदि वे १४ वर्ष के वनवास से घबड़ा जाते तो क्या भूतल से पापियों का भार हटता ? भगवती सीता जैसी सती नारी को भी त्याग कर वे वस्तुतः मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए। भरत ने भी अयोध्या के देव दुर्लभ वैभव को ठुकरा दिया और १४ वर्षों तक नन्दीग्राम में साधना का कठोर जीवन बिताया।

लोक को अपने आलोक से प्रकाशित करने के उद्देश्य से ही राजस्थान की वीरांगनाओं ने धधकते अग्नि कुण्ड में अपने को स्वाहा कर जौहर व्रत की परम्परा को अग्निपथ पर खड़ा कर दिया। अगर वे दैहिक सुखों के आकर्षण

में फँस जाती तो क्या हम उनकी समाधि पर परम श्रद्धा से पुष्प मालाएँ समर्पित करने जाते ? महारानी पद्मिनी, हाडीरानी, कर्णवती, जवाहरबाई, वीरमदे आदि वीरांगनाओं ने दुःख को ही साध्य माना और अपने आत्म वलिदान से समय की शिला पर ऐसी अमिट रश्मि रेखा खींच दी है कि जिसकी ज्योति काल एवं देश की सीमाएं भी मन्द नहीं कर सकती।

इसी त्यागमयी परम्परा में महाराणा प्रताप का नाम भी मणिमाला के सुमेरु के रूप में आता है। यदि इस वीर नर शार्दुल के मानस में राष्ट्र प्रेम की निर्मल भागीरथी प्रवाहित न हुई होती और जीवन के २५ वर्ष घोर वेदनाओं से लवालव भरे हुए न व्यतीत हुए होते तो कौन भारतवासी उस युग-नायक पर गर्व कर सकता ? महाराणा ने राजमहलों के भोगविलासों को ठुकराया और तृणों-पाषाणों की कठोर शैया अपनाई, राजसी भोजन का आनन्द त्याग कर सपरिवार घास की रोटियां खाई, राजमहल में पलने वाली तथा दास दासियों से घिरी रहने वाली महारानी वीरमदे तथा दुधमुंहे सुकुमारों के साथ वन-वन घूमे। तभी तो जन-जन ने उनकी वन्दना में हृदय की राशि-राशि श्रद्धा समर्पित की। यदि सुख की चकाचौंध में वे पड़ जाते तो क्या एक इतिहास पुरुष के रूप में वे सादर प्रतिष्ठित होते ?

जो ये कहते हैं कि हम सुख का भोग कर रहे हैं वे भ्रमित हैं। कारण जिनका भोग अनन्तकाल से हो रहा है वह अब तक अवश्य ही समाप्त हो जाता। लेकिन सुख तो समाप्त न हुए पर उसको भोगने वाले समाप्त हो गये। हम सुख का भोग नहीं करते हैं; वही हमारा भोग करता है। जिसके अपनाने से हमारा अस्तित्व ही निराधार बन जाए उस सुख रूपी जहर की मीठी गोली को हम स्वीकार ही क्यों करें ? इसके विपरीत जिस कडुवे किन्तु अमृत स्वरूप दुःख का पान करने से हमारी आत्मा जीवन के चरम लक्ष्य की ओर तीव्रगति से गतिशील हो जाती है। दुःख के सम्भावित भय से यदि हमारे राष्ट्रनायक डा० राजेन्द्रप्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू, नेताजी सुभाषचन्द्र वोस एवं अगणित स्वतंत्रता सेनानी हिचक जाते तो क्या यह महादेश स्वतंत्र राष्ट्रों की पंक्ति में बैठने का अधिकारी बन पाता ? ये राष्ट्रनायक यदि दुःखों से घबड़ा जाते और सुखों की लालसा करते तो अपने जीवन में अवश्य ही इन्द्र सुलभ भोगों को प्राप्त कर लेते, पर आज यह राष्ट्र उनकी अर्चना में अपनी श्रद्धा के प्रदीप न जलाता।

योगेश्वर भगवान कृष्ण ने गीता के १२ वें अध्याय में कहा है कि कोई भी बिना कष्ट सहे मुझे प्राप्त नहीं कर सकता है। आखिर ध्रुव, प्रह्लाद आदि भक्तों ने तो घोर दुःखों को झेलकर ही ईश्वर को प्राप्त किया था।

राजरानी मीराबाई ने भी वेदना का प्रदीप जला कर गिरधर गोपाल को प्राप्त किया। राणा ने विष का प्याला भेजा, पीकर मीरा अमर हो गई। लेकिन राणा कहाँ है? पाण्डिचेरी आश्रम की पूजनीया माताजी ने भी अपने निबन्ध "दुख झेलना जानो" में लिखा है—

"मेरे हृदय ने भी दुःख झेला है और कातर पुकार की है पर हे शांतिदायक भगवान! मैंने तुझे पुकारा, उत्कंठा से तेरी प्रार्थना की और तेरी दीप्तमान ज्योति की प्रभा प्रकट हुई और उसने मुझे नवजीवन दान दिया।"

हमें दुःख की अग्नि-परीक्षा में घबड़ाना नहीं चाहिए। उनकी ज्वाला में अपने को तपा कर व्यक्तित्व का निखार करना चाहिये। हमें परमपिता को हृदय से धन्यवाद देना चाहिये कि उसने हमें परीक्षा के योग्य समझा और दुःख की अग्नि परीक्षा के सम्मुख खड़ा कर दिया। अग्नि-परीक्षा का सौभाग्य सुख-सेजों पर किल्लोल करने वाली नारियों को नहीं युग की सीता को ही मिलता है।

वीणा के स्वर किसी अव्यक्त पीड़ा को अपने तारों में भर जब झंकृत होते हैं तभी मधुर संगीत मुखरित होता है। अंग्रेजी के महाकवि शेली ने कहा है कि हमारे मधुरतम गीत वही हैं जो दुःख से पूर्णतया ओतप्रोत हैं। करुणा से ही तो कविता का जन्म हुआ। क्रौंच के दुःख को देखने पर ही महर्षि वाल्मिक के कण्ठ में सर्वप्रथम कविता आ विराजी। भगवान भी तो पीड़ा में प्रकट होते हैं। किसी कवयित्री ने ठीक ही कहा है—

तुमको पीड़ा में पाया, तुम में ढूंढूंगी पीड़ा

तभी तो वे दीनबन्धु कहलाते हैं। हमें दुखों को अग्नि परीक्षा के एक सुन्दर सुयोग के रूप में स्वीकार करना चाहिये। दुःख ही हमारे आत्म तेज को निखारते हैं, अमरता के सोपान की ओर गतिशील बनाते हैं। और जीवन रूपी हीरे को तराश कर मूल्यवान स्वरूप प्रदान करते हैं। आओ हम दुःखों को अपनाना सीखें, उन्हें एक सुन्दर सुयोग की भांति स्वीकार करें तब हमें समस्त सृष्टि आलोकमय वरदान स्वरूप लगेगी और हम वस्तुतः जीवन के परम लक्ष्य पर सुख के समीप होंगे।

राजस्थानी वीर, अगस्त १९७९

देश किधर जा रहा है ?

आज से कुछ दशक पूर्व हमारे समाज एवं राष्ट्र में एक परम्परा थी। हम कोई भी कार्य करने के पूर्व पुराने अनुभवी बुजुर्गों से सलाह लेते थे और विशाल ज्ञान के कारण उन बुजुर्गों की प्रतिष्ठा समस्त समाज करता था। उनका अनुभव एवं क्रियात्मक ज्ञान दीर्घ जीवन रूपी दूध के मंथन से निकाला हुआ नवनीत होता है, जो समस्त समाज का कल्याण करता है।

इस सम्वन्ध में मैंने हाल में ही देश के प्रतिष्ठित उद्योगपति श्री जे० आर० डी० टाटा का एक वक्तव्य समाचार पत्रों में देखा। उन्होंने अत्यन्त समयानूकूल वात कही है कि देश के राजनेताओं को आर्थिक तथा व्यावहारिक शिक्षा मिलनी चाहिए। आज सरकार में कुछ को छोड़कर शेष ऐसे हैं, जिन्होंने न तो कलकारखाने देखे हैं और न आर्थिक समस्या सम्वन्धी व व्यवस्था सम्वन्धी समस्याओं को जानने की कोशीश की। कोई भी हो जव उसके कंधो पर शासन का दायित्व आता है, तो उसे किसी भी विषय पर वहुत सोच समझकर वक्तव्य देना चाहिए। एक केन्द्रीय मन्त्री ने अभी हाल ही में देश की उद्योग-व्यवस्था की आलोचना की थी। श्री टाटा ने उसी सन्दर्भ में कहा है कि आलोचना करने में सरकार को असहिष्णु न होना चाहिए। उन्होंने देश के वरिष्ट उद्योगपति एवं सुष्ठु विचारक श्री घदश्याम दास विड़ला की प्रशंसा की। श्री बिड़ला ने उद्योगपतियों से कहा था कि वे नयी दिल्ली में क्या हो रहा है, उसे देखे विना अपने उत्पादन को बढ़ाने की चेष्टा करें।

श्री घनश्यामदास विड़ला का दीर्घजीवन रचनात्मक ज्ञान का एक जीवन्त प्रतीक हैं। पूर्व जन्म के पुण्य प्रभाव से या इसी जन्म में उन्होंने जो भी अनुभव अर्जित किये हैं, वे सब एक कर्ममय जीवन और मंथनके नवनीत हैं। उनकी सूझवूझ के कारण ही स्व० मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास, लाला लाजपतराय, पं० मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी आदि उनका आदर करते थे। यही नहीं और भी राजनीतिज्ञ एवं व्यवसाय क्षेत्र के प्रतिष्ठित जन जैसे सरदार वल्लभ भाई पटेल, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, श्री गगन विहारी लाल मेहता, सर पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास आदि अनेक शीर्ष जन श्री बिड़ला की सृजनात्मक प्रतिभा के कायल थे। उनका जीवन राष्ट्र के सृजन एवं विकास के लिए सदा सादर समर्पित है। देश की हर कमी को दूर करने के लिए वे सतत सचष्ट रहे हैं।

एक बार की बात है। मैं तथा एक मित्र ने श्री बिड़ला से पूछा— कुछ समय पहले आप कहते थे कि अव और उद्योग स्थापित करने की

आवश्यकता नहीं है. किन्तु आपका मन भरा नहीं है। अब आप विदेश जाकर ३-३।। करोड़ रुपये की नयी मशीनों की खरीद कर आये हैं। यह सुनकर उन्होंने हँसकर कहा—मैंने जो आपसे पहले कहा था, वही ठीक है, लेकिन जब देश में किसी वस्तु का अभाव एवं स्थिति से उत्पन्न कष्ट हो तो नये उद्योग जरूर स्थापित करने चाहिए। इससे अपने देश के लोगों की जरूरतें भी पूरी होंगी और सभी खुशहाल भी होंगे। मुझे और चाहिए क्या? कुछ साथ तो जाता नहीं। देश का कार्य है, किसी भी रूप में होना चाहिए। जब खूब सोच विचार कर कारखाने स्थापित किये जाय और उनके उत्पादन की खपत देश में हो, तो हानि की सम्भावना कम होती है।

इन्हीं देशव्रती कर्मयोगी बिड़लाजी ने राजस्थान के पिलानी नामक स्थान में एक ऐसे शिक्षण संस्थान की स्थापना की, जहाँ हजारों छात्र-छात्राएं शिक्षा पा रहे हैं। आज से १०-११ वर्ष पूर्व जब मैं संसद सदस्थ था तो २-३ अन्य सांसदों के साथ वहाँ गया था। उस समय ही उसका वार्षिक बजट पौने दो करोड़ रुपये के करीब था। इस समय का अनुमान लगाया जा सकता है कि कितना बढ़ा है। ऐसे न जाने कितने संस्थान बिना किसी आर्थिक लाभ के उद्देश्य से श्री बिड़ला द्वारा मात्र इस देश के उत्थान एवं आने वाली पीढ़ियों के विकास के लिए स्थापित किये गये हैं।

ऐसे व्यक्ति की मात्र थोथी वाहवाही के लिए आलोचना करना, बुद्धिसंगत नहीं कहा जायगा। हमें चाहिए कि हम उनके दीर्घ अनुभव से कुछ शिक्षा ग्रहण करें और उस प्राप्त ज्ञान से देश का मंगल करें।

छोटा बालक जब विद्यालय में पढ़ने के लिए जाता है, तो अपने गुरु से विद्या लाभ के साथ-साथ अनुभव से भी लाभ उठाता है। अनुभव से लाभ उठाना वास्तव में क्रियात्मक ज्ञानार्जन के बराबर है। कहने में भी संकोच होता है कि इतने दायित्वपूर्ण पद पर रहकर भी हमारे राजनेता छोटे बच्चों के बराबर भी समझ नहीं रखते हैं। हर विचारवान व्यक्ति अपने से अनुभवी जनों से परामर्श करता है। उदाहरण के लिए शर शय्या पर लेटे भीष्म पितामह से धर्मराज युधिष्ठिर भी राजधर्म, गृहस्थ धर्म, वानप्रस्थधर्म सन्यास धर्म, आदि का उपदेश लेने गये थे। यह एक स्वस्थ परम्परा थी।

इस स्थल पर यह चर्चा असंगत न होगी—श्री बिड़ला के प्रयास से सन् १९३१ में गोल मेज सम्मेलन में गांधी जी आदि नेतागण सम्मिलित हुए थे। इनसे जो तत्कालीन ब्रिटिश राजनेताओं का पत्र व्यवहार हुआ था, वह सब अपने देश के प्रति सम्मानजनक एवं उदार था और आज भी पठ-

नीय है। इधर गांधीजी से उधर अनेक लोगों से पत्राचार करना तथा मिलना वे सभी घटनाएँ अभी पुस्तकाकार में सामने आयी हैं। "बापू की प्रसादी" के नाम से चार पुस्तक छपी हैं। इन सबका उनमें वर्णन है। हमें ऐसे महान विचारवाले एवं सम्माननीय व्यक्ति का सम्मान करना ही चाहिए। ऐसे व्यक्ति के प्रति अनर्गल प्रलाप मात्र अहंकार ही कहा जायगा।

यह देश का दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि कुण्ठावश ऐसे लोग सामने आ गये हैं, जो प्रगति के बढ़ते चरणों में विराम लगा रहे हैं। हमारे सामने दो प्रतीक हैं। एक उनका जो व्याख्यान न देकर केवल कर्म से देश को सँवार रहे हैं और दूसरा उनका जो मात्र अनर्गल प्रलाप के द्वारा देश के भाग्य-पटल पर दुर्भाग्य के काले अक्षर अंकित कर रहे हैं।

और भी अनेक बातें हैं। गाँधीजी हरिजनों को मन्दिर में प्रवेश कराने का प्रयत्न कर रहे थे। पद्मनाभन मन्दिर त्रावनकोर महराज के राज्य में था। यह गुरुतर भार श्री बिड़लाजी पर दिया गया। मैं भी उनके साथ था। बंगलोर में गाँधीजी थे। वहाँ सर मिर्जाइस्माइल को बुलाया गया। सरदार पटेल भी थे। वे सर्वप्रथम मैसूर महाराजा से मिले, फिर कोचीन राज्य गये। वहाँ के महाराजा से मिले। फिर त्रावनकोर महाराज से मिलकर हरिजनों को मन्दिर प्रवेश कराने में सफल हुए। दूसरी घटना नोबेल पुरस्कार विजेता सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर सी० वी० रमन से सम्बन्धित है। उन्हें एक अति मूल्यवान कैमरा खरीदकर दिया। श्री रमन के प्रयोग सफल हुए और नोबेल पुरस्कार मिला। अभी हाल में व्यापारियों की एक बड़ी संस्था के वार्षिकोत्सव पर उन्हें बुलाया गया, उन्होंने अपने विशाल अनुभवों के आधार पर जो कुछ भी कहा वह सब महान आदर्शों से पूर्ण था और एक-एक शब्द नाप तौल कर बोल रहे थे।

कोई भी व्यक्ति यदि किसी की आलोचना करता है, तो पहले उसे अपना अन्तर झांक कर देख लेना चाहिए। यही बात राजनेताओं के लिए भी लागू है। कुछ दिनों पूर्व सरकार ने कोयला-उद्योग अपने हाथ में ले लिया था। सरकार ने ४-५ दफे स्वयं मूल्य वृद्धि कर दी, साथ ही कोयले का अभाव भी होता गया। अब फिर दर बढ़ा दी गयी है। मजदूरों का वेतन बढ़ाया गया और इस उद्योग में कहा जाता है कि १०० करोड़ का सालाना घाटा हो रहा है। जनता त्राहि-त्राहि कर रही है, पर इन सब बातों का ख्याल कौन करे।

जीवन बीमा, उद्योग भी सरकार की अकुशलता का प्रमाण दे रहा है। सर्वसाधारण को अपना ही रुपया पाने में कितनी मुसीबतों का सामना

करना पड़ रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है। संसार में प्रीमियम की दरें भारत में सबसे अधिक हैं, जबकि सुविधाएँ सबसे कम। आज जीवन बीमा निगम सरकार, प्रबन्धक फील्ड आफीसर और कर्मचारी वर्ग का एक ऐसा गिरोह बन गया है, जो जनता के धन को लूट रहा है। मैं स्वयं अपने अनुभव की बातें कर रहा हूँ। मेरी पालिसी का चेक मुझे कितनी मुसीबतों के बाद मिला और वह भी जीवन बीमा के मैंनेजर ने जब यह जाना कि मैं संसद सदस्य हूँ, तब फोन पर बुलाकर दिलाया। लेकिन दो महिने के बाद पुनः जीवन बीमानिगम से पत्र आता है कि आपका रुपया समय पर जमा नहीं हुआ, अतः आपकी पालिसी क्यों न जब्त कर ली जाय? मैंनेजर से जब वस्तु स्थिति समझी, तो फोन पर क्षमा याचना की।

इन सारी परिस्थियों को देखकर यही लगता है कि हमारा देश कितने भयानक भविष्य की ओर बढ़ रहा है और उसे गलत रास्ता बता रहे हैं ये राजनीतिज्ञ। जब बुरे दिन आने वाले होते हैं तो बुद्धि पहले नष्ट हो जाती है। गोस्वामीजी ने कहा है :—

जा को बिधि दारुन दुःख देहीं
ता कर मति पहले हरि लेहीं

आज ठण्डे दिमाग से इन सब पर विचार करना है। जिनके हाथ में शासन की बागडोर है, वे देश को किधर ले जा रहे हैं, यह सर्वसाधारण को सतर्क होकर सोचना और देखना है।

साप्ताहिक जनजीवन—१५-८-७९

दृढ़ संकल्प से ईश्वर की प्राप्ति !

इसी देवभूमि भारत में आज से कई युगों पहले तीन छोटे-छोटे बालकों ने अपने अद्भुत संकल्प एवं मन की दृढ़ता के ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये थे, जो केवल बालकों के ही नहीं, वल्कि समस्त मानवता के समुज्ज्वल आदर्श वन गए। थे तीनों बालक ध्रुव, प्रह्लाद एवं नचिकेता थे। इनमें से कोई एक वर्ष छोटा, कोई एक वर्ष वड़ा था। तीनों का जन्म भी अलग-अलग काल में हुआ और तीनों की क्रियायें भी अलग-अलग थी। लेकिन तीनों ने अपने अमित दृढ़ संकल्प से ईश्वर की प्राप्ति की। तीनों की आयु अत्यल्प थी, पर मन की दृढ़ता इतनी विशाल थी कि तीनों ने साक्षात परमेश्वर का दर्शन कर अपने को अनन्य एवं जगत को धन्य बनाया।

बालक ध्रुव : एक लम्बा कालखण्ड बीत गया, जब इसी भारत भूमि में राजा उत्तानपाद राज्य करता था। उसकी पहली रानी सुनीति से ध्रुव की उत्पत्ति हुई थी। कुछ दिनों वाद राजा ने दूसरा विवाह सुरूचि से किया। सुरूचि के सौन्दर्य से मुग्ध हो राजा की पहली रानी से स्नेह कम हो गया। सुरूचि के भी एक पुत्र उत्तम उत्पन्न हुआ। एक दिन राजा के पास नई रानी वैठी हुई थी। उसका पुत्र उत्तम राजा की गोद में वैठा हुआ था। उसी समय वालक ध्रुव भी आ गया और पिता की गोद में वैठने की उसकी भी इच्छा हुई। वह जैसे ही पिता की गोद में वैठने के लिये बढ़ा, नई रानी ने उसका हाथ पकड़ कर खींचते हुए व्यंग से कहा—'यदि तुम्हें महाराज की गोद में बैठना है, तो जा कर भगवान को प्रसन्न करो और उनसे वरदान लेकर मेरे गर्भ से जन्म धारण करो।'

यह बात सुन कर ध्रुव को बहुत चोट लगी और वह रोता हुआ अपनी मां के पास गया। माता के पुचकारने पर उसने सब कुछ बता दिया। सुनीति अत्यन्त निपुण एवं धीरवती थी। उसने पुत्र को दिलासा देते हुए कहा—'वेटा, अगर ईश्वर की कृपा होगी तो तुम उसी की गोद में बैठने के अधिकारी बनोगे। उसके दर्शन मात्र से कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता।'

'माँ, तव मैं भगवान को ही प्राप्त करूंगा। तू मुझे आशीर्वाद दे, मैं अभी उनकी खोज में जाऊंगा। पांच वर्षीय बालक ध्रुव ने अत्यन्त दृढ़ता से कहा। पुत्र का दृढ़ निश्चय देख कर माता ने अत्यन्त करूणा से आशीर्वाद दिया और वह बालक अनन्त की खोज में अन्तहीन साधना के लिए चल पड़ा! माता को दृढ़ विश्वास था कि भगवान के आश्रय में रहने वाले का अमंगल कभी नहीं होता। ध्रुव घने जंगलों में होकर अज्ञात पथ पर

बढ़ता गया। उसे न खाने की चिन्ता थी और न पीने या सोने की। मार्ग में ही नारद जी ने उसकी परीक्षा ली—'बालक। तुम कौन हो और किस उद्देश्य से हिंसक पशुओं से भरे इस वियावान वन में चले जा रहे हो। ध्रुव ने उत्तर दिया—मुझे भगवान के दर्शन करना है और यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि उनके दर्शन पाए विना नहीं लौटूंगा। बालक का दृढ़ निश्चय देख कर नारद जी ने प्रसन्नता पूर्वक उसे आशीर्वाद दिया।

ध्रुव ने एक स्थान पर अपना आसन जमा दिया और अखण्ड तप में लीन हो गया। बालक का दृढ़ संकल्प देखकर भगवान प्रकट हुए उसे सर्वोच्च एवं अचल आसन दिया, जो ध्रुवतारा के नाम से आकाश में आज भी अपना परिचय दे रहा है। ईश्वर की कृपा से बालक ध्रुव सचमुच 'ध्रुव' बन गया।

बालक प्रह्लाद : दृढ़ संकल्प का दूसरा उदाहरण भक्त बालक प्रह्लाद है। उसका जन्म दैत्य कुल के परम प्रतापी राजा हिरण्यकशिपु के पुत्र के रूप में हुआ था। हिरण्यकशिपु के छोटे भाई हिरणाक्ष का वध भगवान विष्णु ने वराह रूप धर कर किया था। इसी कारण वह भगवान विष्णु का दुश्मन हो गया। और अपने को स्वयं भगवान का अवतार कहने लगा। यही नहीं, उसने ब्रह्माजी से वरदान भी प्राप्त कर लिया था कि उसे मनुष्य पशु, पक्षी आदि दिन या रात को घर में या बाहर किसी अस्त्र-शस्त्र से न मार सके। उसके अत्याचार से देव लोक भी काँप उठा था। देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्माजी भगवान विष्णु के पास गये। उन्होंने कहा कि उस दैत्य का शीघ्र ही संहार होगा।

प्रह्लाद इसी का पुत्र था, जिसे नारदजी ने बचपन से ही ईश्वरीय ज्ञान दे दिया था। वह उठते-बैठते, खेलते ईश्वर के ही नाम का जप करता था। हिरण्यकशिपु के लिए यह सब असह्य था कि उसका पुत्र ही उसके दुश्मन का नाम जपे। उसने प्रह्लाद को नाना प्रकार के कष्ट दिए। पर्वत से गिराया, पीने को जहर दिया, हाथी से कुचलवाने का प्रयत्न किया और अपनी बहन होलिका के द्वारा उसे जलाने का प्रयत्न किया। होलिका तो जल गई पर प्रह्लाद का कुछ भी नहीं बिगड़ा। हिरण्यकशिपु के हर प्रयत्न असफल हो गए। भला जिसके रक्षक हजारों हाथों वाले राम हों, उसका दो हाथ वाला क्या बिगाड़ सकता है?

बालक प्रह्लाद को दृढ़ विश्वास था कि ईश्वर की मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता है, वही इस जगत का संचालक है। कहा जाता है कि प्रह्लाद एक दिन एक कुम्हार के घर के पास से निकले। कुम्हार ने

मिट्टी के कच्चे वर्तनों को पकाने के लिए आवाँ में आग लगा दी, जिसमें एक विल्ली का वच्चा रह गया था। प्रह्लाद ने कुम्हारिन से कहा कि विल्ली का वच्चा तो जल जायगा। इस पर कुम्हारिन ने उत्तर दिया, 'राजकुमार अगर भगवान राम ने चाहा तो वच जायेगा।' प्रह्लाद ने पूछा कि क्या भगवान राम में ऐसी शक्ति है। कुम्हारिन ने कहा 'हाँ। विना उनकी इच्छा के कुछ भी नहीं हो सकता है।' वर्तन पकने के वाद जव आवाँ को खोला गया तो उस धधकते अग्निकुण्ड में भी वह वच्चा एकदम सुरक्षित था। यह अलौकिक दृश्य देखकर प्रह्लाद की ईश्वर के प्रति और भी दृढ़ आस्था हो गई।

प्रह्लाद की वढ़ती हुई भक्ति से उसका पिता परेशान था। उसने सोचा कि अव इसका वध मुझे ही करना पड़ेगा। अतः एक दिन उसने प्रह्लाद से कहा कि वता, तेरे राम कहाँ है? प्रह्लाद ने कहा—पिताजी वे हममें, आपमें, आपके खन्जर में और इस खम्भे में, जिससे आपने मुझे वाँधा है, सर्वत्र है। हिरण्यकशिपु जैसे ही खम्भे की तरफ वढ़ा कि भक्त वालक को वचाने भगवान नृसिंह का रूप धरकर खम्भे से ही प्रकट हो गए और संध्या समय उसके महल की देहली पर वैठकर हिरण्यकशिपु का वक्षस्थल अपने नाखूनों से चीर डाला। भगवान का यह रौद्ररूप देख कर दिग्पाल भी घवड़ा गए और प्रह्लाद के संग सभी ने उसकी वन्दना की। वे शान्त हो गए और वालक प्रह्लाद ने अपने दृढ़ विश्वास से उनका दर्शन कर लोक में अमरता प्राप्त कर ली।

ऋषि बालक नचिकेता

तीसरी कथा ऐसे वालक की है, जो वहुत ही छोटी आयु में वेदों एवं शास्त्रों का पूर्ण ज्ञाता हो गया था। उसके पिता वाजश्रवास ने महान आकांक्षा के वशीभूत होकर विश्वजित यज्ञ करके अपना सर्वस्व दान कर दिया। उन्होंने ऐसी भी गायें दान में दी थी, जिनका दूध सूख गया था और वे चलने-फिरने तथा चरने में असमर्थ थी। वालक नचिकेता विचार करने लगा कि इन अनुपयोगी गायों का दान देकर मेरे पिता किस फल की आशा रखते हैं?

वालक नचिकेता ने पिता से अपनी शंका प्रकट की। ऋषि वहुत क्रोधी थे पर उन्होंने कोई उत्तर न दिया। वालक ने पुनः पूछा; पिताजी, पुत्र भी तो पिता की सम्पत्ति होता है, आप मुझे किसे देंगे? क्रुद्ध होकर पिता ने कहा—'तुझे मृत्यु को दूंगा।' वालक ज्ञानी तो था ही। उसने दृढ़ निश्चय किया और मृत्यु के साक्षात दर्शन पाने की प्रतिज्ञा लेकर अनजान पथ

पर चल पड़ा। वह चलता रहा और चलता रहा। निरन्तर चलने से थक गया था, लेकिन मन में उमंग थी, हताश नहीं हुआ था।

वालक की दृढ़ प्रतिज्ञा देख कर नारदजी ने उसे सहायता करने का विचार किया। वे बालक के सामने प्रकट होकर कहने लगे—'वत्स, मृत्यु को तुम कहां पावोगे ? जाओ, अपने पिता के पास लौट जाओ।' बालक ने दृढ़ता से उत्तर दिया। आप तो सर्वज्ञ हैं। आप मेरी सहायता करें। मुझे इस निश्चय से विचलित न करें। प्रसन्न हो नारदजी ने उसे सत्य मार्ग दिखा दिया।

नचिकेता नारदजी के बताए हुए मार्ग से यमराज के लोक में पहुँच गया। यमराज उस समय घर पर नहीं थे। उसे यह बताया गया कि यमराज (मृत्यु देवता) अभी नहीं हैं। आप विश्राम करें, कुछ भोजन कर लें, नचिकेता ने कहा कि यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है कि विना मृत्यु के दर्शन किये कुछ भी ग्रहण नहीं करूँगा। यमराज को जब यह पता चला तो वे दौड़ते हुए आये और बोले—'मैं तुम्हारी हर प्रकार से सहायता करूंगा। बालक नचिकेता ने यमराज की तीन दिन तक विना कुछ खाये-पिये प्रतीक्षा की थी। अतः उन्होंने उसे ३ वरदान देने को कहा—बालक ने कहा कि आप पहले वरदान दीजिये। फिर कुछ ग्रहण करूंगा। यमराज ने सहर्ष स्वीकृति दे दी।

उसने पहला वर मांगा—'हे मृत्यु देवता, मेरे पिता का क्रोध शांत संकल्प हो और जब मै लौटूं तो मुझे पहचान लेवें। यमराज ने वर दे दिया। तब नचिकेता ने दूसरा वर माँगा—'हे मृत्यु देव, स्वर्ग की साधना एवं अमरता दिलाने वाली अग्नि क्या है, जिसके जान लेने से जरा-मरण रोगादि का भय नहीं रहता है ? यमराज ने उसे स्वर्ग-साधक अग्नि का उपदेश देकर कहा—'मैं तुमसे प्रसन्न हूं। मैं तुम्हें नचिकेता अग्नि की यह माला देता हूँ। आज से यह अग्नि नाचिकेत अग्नि के नाम से प्रसिद्ध होगी।

जो त्रि-नाचिकेत होगा अर्थात् नाचिकेत अग्नि की उपासना ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ आश्रम में करेगा वह जीवन की तीनों सन्धियों को पार करके दैहिक, भौतिक, आध्यात्मिक, माता-पिता, आचार्य, मुक्ति, युक्ति, अनुभूति, कर्म, भक्ति, ज्ञान एवं यज्ञ, तप, दान के सोपानों पर चढ़ कर अमरत्व को प्राप्त करेगा। प्रत्येक सन्धि से गुजरने पर एक-एक स्वर्ग अग्नि उत्पन्न होती है।

अब नचिकेता ने तीसरा वरदान माँगा—'हे मृत्यु, मृत्यु के बाद जीव की क्या स्थिति होती है। मैं इस गूढ़ रहस्य को जानना चाहता हूँ।

यमराज ने इसे मात्र बालक की जिज्ञासा समझी और उसे अनेक प्रलोभन देने लगे। उन्होंने सुन्दरियों, स्वर्ग सुख भोग, अपार वैभव को देने का प्रस्ताव रखा। पर नचिकेता अपने प्रश्न पर दृढ़ रहा। यमराज ने उसके ज्ञान की परीक्षा भी ली और जब उनका सन्देह दूर हो गया तो उन्होंने मृत्यु के पहले और मृत्यु के बाद का रहस्य प्रकट कर दिया। उन्होंने उसे आत्मा की अमरता एवं श्रेय तथा प्रेय पथ का भेद भी बता दिया।

इस प्रकार यह छोटा बालक मृत्यु के पास से बल ज्ञान युक्त, मल हीन होकर १४ रत्नों की अखण्ड निधि लेकर लौट आया। पिता वाजश्रवस ने उसका प्रसन्नता पूर्वक अभिनन्दन किया। आज भी नाचिकेत अग्नि उस बालक की अमरता एवं दृढ़ संकल्प की ज्योति लोक-लोकान्तरों में फैला रही है।

साप्ताहिक नवजीवन—१५-८-७९

सावधान नशीली हवा बह रही है

एक बार मैंने समाचार पत्रों में पढ़ा था किसी कुएँ में भाँग पड़ जाने के फलस्वरूप जिसने भी उस कुएँ का जल पिया उसे नशा हो गाया। मेरी प्रारम्भ से ही प्रातः कालीन वायु सेवन की आदत रही है। उन दिनों कलकत्ता हाईकोर्ट के एक विचारपति महोदय भी घूमने आया करते थे। उनसे भेंट होने पर प्रायः सामयिक विषयों पर चर्चा हुआ करती। मैंने जब उससे उस समाचार का जिक्र किया तो वे हँसने लगे। मैंने विनोद पूर्वक कहा—जज साहब, आपके बंगाल में कुएँ को इन्दारा और भांग को सिद्धि कहते हैं। आप तो जानते हैं कि जिसे सिद्धि पीने को मिल जाय वह पागल हो जाता है। उस दिन हमें हँसने का अच्छा खासा मसाला मिल गया था।

कुछ दिनों बाद एक दिन जज साहब ने स्वयं ही मेरी उस बात की याद दिलाते हुए कहा—आपकी कुएँ में भांग वाली घटना शायद हर जगह घटने लगी है जिसे देखिये उसी पर कोई न कोई नशा सवार है। मेरे घर में रसोई बनाने वाला ठाकुर और झी (नौकरानी) आपस में न जाने क्या-क्या अनाप-शनाप बकते रहते हैं मेरे इजलास में ? वादी प्रतिवादी झूठ को सच

सावित करने के लिये अजीबो गरीब चौंका देने वाली दलीलें पेश करते हैं। आखिर इस दुनिया को हो क्या गया है ? मुझे तो ऐसा लगता है हर कोई नशे में ही बोल रहा है।

उन दिनों मैं संसद का सदस्य था। राजनैतिक विषयों में मेरा मन सदैव उलझा रहता था। देश विदेश के विभिन्न घटनाचक्रों की समीक्षा मन में अविराम चलती रहती थी। मैंने जज साहब से कहा···दुनियाँ वही है, सिर्फ उसकी मानसिकता बदल गई है। सोचने के दृष्टिकोण में अन्तर आ गया है। धर्म-कर्म के शाश्वत मूल्यों में स्थिरता नहीं रह गई। आज का मनुष्य अपनी पुरानी पहचान खोता जा रहा है। उसकी मानवीयता विवादास्पद बन गई है। जज साहब किन्हीं गम्भीर विचारों में डूब गये थे। उन्होंने दीर्घ निःश्वास लेकर केवल अपना स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

मुझे चिन्तन के लिये एक महत्वपूर्ण विषय मिल गया। मैं सोचने लगा कि नशा तो आदिम काल से मानव मस्तिष्क में मौजूद रहा है। बल का नशा, धन-सम्पति का नशा, सत्ता का नशा, विजय का नशा, किसी भी सिद्धि अथवा, उपलब्धि का नशा न जाने कितने बड़ी-बड़ी घटनाओं का कारण बना है। इस कोटि का नशा मादक द्रव्यों से उत्पन्न होनेवाला नशे से कहीं अधिक तेज और खतरनाक होता है। नशा कोई भी हो, जब वह सातवें आसमान पर पहुँचता है तो उन्मत्त व्यक्ति को कठपुतली की भाँति नचाता है। उसके लगातार झटकों से आत्म नियन्त्रण के सारे धागे तड़ातड़ टूट जाते हैं।

देश को स्वाधीनता मिलने के बाद राजनीति के चौपाल में जमा लोगों ने जब स्वार्थ की कच्ची शराब अन्धाधुन्ध पीनी शुरू की उनपर एक विचित्र नशा सवार हुआ। उनके असन्तुलित होने, लड़खड़ाने और मुँह के बल गिरने से एक ऐसा अशोभनीय दृश्य उपस्थित हुआ जिसे देखकर गर्दन नीचे झुक जाती है। राजनैतिक अस्थिरता और अनिश्चयात्मकता की स्थिति उत्पन्न करने में उन्हीं लोगों का हाथ है। बंगाल में स्व० डा० विधानचन्द्र राय के समय तक व्यवस्था के पाये मजबूत और स्थिर रहे, इसी प्रकार केन्द्र में स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू और स्व० लालबहादुर शास्त्री, के जीवन काल तक देश के कोने कोने में प्रगति और राष्ट्रीय गौरव की जो गूँज देशवासियों के कानों से टकराती रही वह कालान्तर में कर्कश कोलाहल में परिवर्तित हो गई। देश के लिये करने मरने की प्रेरणा विलुप्त होते ही लोगों में अनास्था, अविश्वास और कर्त्तव्यहीनता के बीज अंकुरित होने लगे। आज राष्ट्रभक्ति की भावना मृत्यु शैय्या पर पड़ी अन्तिम साँसे गिन रही है। शासकवर्ग में कुर्सी का कभी न खत्म होने वाला झगड़ा उस निम्नस्तर पर उतर आया है कि उसे

देखकर मन खिन्न हो उठता है। किसी को मन्त्री बनने की भूख है, किसी को संसद या विधानसभा का सदस्य बनने की बेचैनी है, कोई दल में प्रमुख स्थान पाने के लिये एड़ी चोटी का पसीना एक कर रहा है, कोई रातोंरात जमीन से उठकर आसमान पर जा बैठने की कल्पना को साकार करने में जुटा हुआ है। जिसकी भूख मिट जाती है उस पर नशा सवार हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने जिसे प्रभुता का मद कहा है, वह मद जब देश और समाज के प्रति गुरुत्तर दायित्वों की उपेक्षा का कारण बन जाता है, अपनी कब्र आप ही खोदने की प्रेरणा देने लगता है, तो उसकी घातकता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

आज आपस में सिद्धांतों के लिये नहीं बल्कि स्वार्थ के लिये लड़ाई ठनती है। राजनीति के खिलाड़ी जनता को उकसा कर भुलावा देकर हिंसा की आग में झोंककर अपना मतलब सीधा करने में ही अपनी नीति की सफलता मानते हैं। सिद्धान्तवादियों ने गिरगिट का गुण धर्म अपनाकर समय को अपने अनुकूल बनाने की युक्ति तलाश कर ली है। अब त्याग, आदर्श, सत्य, धर्म और राष्ट्रीयता का उपयोग उस रामनामी चादर की भांति किया जाता है जिसे ओढ़नेवाला कोई भी व्यक्ति धर्मात्मा दिखाई देता है और उसके सारे दुर्गुणों पर कुछ देर के लिये परदा पड़ जाता है।

आज देश, समाज, परिवार में सर्वत्र एक ही प्रकार की मानसिकता दृष्टिगोचर होती है किसी न किसी नशे का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति में दिखाई पड़ता है। वह उस हवा की देन है जिसमें हम आज साँस ले रहे हैं। जबतक सीमित मात्रा में होता है तबतक वह चेतना को दिग्भ्रमित नहीं करता। इसी प्रकार विष की मात्रा अधिक होते ही मारक बनता है। सच तो यह है कि आज नशे और विष दोनों का सेवन एक ही उद्देश्य से किया जा रहा है। यही कारण है कि अपना हित दूसरों का अहित और दूसरों का अहित अपना हित बन जाने से हम संतुष्ट होते हैं।

व्यक्ति के हित की तुलना में समष्टिका हित कहीं अधिक बड़ा और महत्वपूर्ण होता है। समष्टिका हित त्याग, बलिदान, परोपकार-भावना और कर्त्तव्यनिष्ठा के बिना कदापि सम्भव नहीं है। महात्मा गांधी ने जिन आदर्शों को अपने व्यावहारिक जीवन में अपनाया, जिन कठिन व्रतों का आजीवन पालन करने की प्रतिज्ञा निभायी क्या उन आदर्शों और व्रतों को उनके अनुयायियों ने भी उसी ईमानदारी से ग्रहण किया? क्या वे लोग सचमुच देश और उसके महान आदर्शों के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना लेकर जी रहें हैं? मैं तो देख रहा हूँ कि गांधीजी ने गीता के अनासक्ति योग को अपने जीवन

में जो महत्ता दी थी वह अनासक्ति योग अब 'आसक्तियोग' में आस्था रखने वाले लोगों की दृष्टि में निरर्थक हो गया है। सन्यास आश्रम में जाने की आयु हो जाने पर भी जो लोग अभी आलीशान मकान बनवाने, जीवन भर के कर्त्तव्य के बदले में जनता से भारी भरकम थैली की भेंट पाने और अपनी अपूर्ण इच्छाओं को येनकेन प्रकारेण पूरी करने की कामना लिये बैठे हैं उन्हें आप क्या कहेंगे ?

नशे के सन्दर्भ में एक और बात कहनी है। जिन नशों का ऊपर मैंने उल्लेख किया है उन सबसे बढ़कर एक और नशा है—जीवन का नशा। यह नशा समझ आते ही चढ़ता है और धीरे धीरे उम्र के साथ-साथ गहरा होता चला जाता है। इस नशे में कभी मनुष्य रस लेता है, कभी पीड़ा अनुभव करता है, कभी उत्तेजित होता है, और कभी गम्भीर मुद्रा में शांत होकर बैठा रहता है। सुप्रसिद्ध उर्दू शायर जनाब् फिराक गोरखपुरी ने कहा है :—

आये थे हँसते-खेलते मैखाने में फिराक
जब पी चुके शराब तो संजीदा हो गये।

जीवन के नशे में जो मस्त है उनपर किसी और नशे का कोई प्रभाव नहीं पड़ता मनीषियों ने कहा है कि नशे का सेवन उस व्यक्ति के लिये पूर्णतया वर्जित है जिसमें उसका संवेग झेलकर अपने आपको संतुलित रख पाने की क्षमता नहीं है। नशे की भी अपना एक मर्यादा होती है। जब वह उस मर्यादा की सीमा रेखा अतिक्रमण करता है तभी उसका घोर तामासिक रूप प्रकट होता है और वह घृणा उत्पन्न कराता है।

सत्ता के नशे में भी जो लोग उन्मत्त होकर सीमा का अतिक्रमण कर गये हैं वे सार्वजनिक निन्दा के पात्र हुए हैं। उनका व्यक्तित्व कलंकित हुआ है। चतुर्दिक बढ़ती हुई इस नशीली हवा के कुप्रभावों पर नियंत्रण पाने के लिये हमें सबसे पहले अपनी मानसिकता ऐसी बनानी होगी कि उसे कोई भी चीज दूषित उद्वेलित और दिग्भ्रमित न कर सके। आत्मकेन्द्रित होकर जीने की प्रवृत्ति का त्याग भी समयोचित है। समष्टि के हित को सर्वोपरि मानकर अपने स्वार्थ को हमें गौण मानना होगा। देश की डांवाडोल स्थिति पर काबू पाने के लिये सत्ता का उपयोग जन कल्याण और राष्ट्र कल्याण के लिये करने की बात सोचनी होगी।

आज सत्ता हथियाने के लिये जिस प्रकार छीना-झपटी चल रही है, अनैतिक कार्यों से सहारा लिया जा रहा है वह निन्दनीय है। सत्ता का दुरुपयोग करना तो एक ऐसा भयंकर अपराध है जिसके लिये उचित दण्ड का विधान सम्भवतः अभी तक विश्व की किसी भी दण्ड संहिता में नहीं किया

गया है। राजनीति भी वर्तमान समय में आम आदमी के लिये नशा बन गई है। जिसे राजनीति का क ख ग भी नहीं आता है वह आम आदमी राजनीति के कुछ प्रचलित सूत्रों को रटकर आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य बनने की चेष्टा करता है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि नशे के प्रभाव से भेड़ भी स्वयं को भेड़िये के समान खूंखार और ताकतवर समझने लगती है। वह स्वयं तो आँख मूंदकर दौड़ती हैं, उसके पीछे-पीछे उसका अन्धानुसरण करने वाले भी भागते हैं और अंत में सबके सब किसी अन्धकूप में गिर पड़ते हैं।

वर्तमान समय में विरोध विध्वंस का नशा भी आमलोगों की पसन्द बनता जा रहा है यह खतरनाक नशा कभी राजनीति का प्याला पीने से चढ़ता है, कभी सम्प्रदायिक जाम पीने से, कभी धर्मान्धता का चरस पीने से उग्र रूप धारण करता है, कभी हिंसात्मक प्रवृति का घड़ा पीने से। इसका परित्याग हर दृष्टि से अनिवार्य है। इससे कोसों दूर रहना ही लाभप्रद है।

हमें अपनी मानसिकता को जर्जर बना देने वाले किसी भी नशे से दूर रहने का संकल्प अविलम्ब ले लेना चाहिए।

लोकमान्य—अगस्त १९७९

आनन्दलोक का सोपान : विपत्ति का वरदान !

एक बहुत बड़े विद्वान थे। उन्हें अपनी विद्या एवं विभिन्न विश्व-विद्यालयों से प्राप्त उपाधियों पर गर्व था। उनकी यह मान्यता थी कि वे ज्ञान के पूर्ण कोष हैं। उनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी थी, विपत्तियों का प्रयत्क्ष अनुभव उन्हें नहीं हुआ था। अतः वे जब भी विद्यार्थियों को पढ़ाते थे कि विपत्तियों से घबराना नहीं चाहिए, विद्यार्थी उनकी ओर देखते रह जाते थे। वे यही कहते कि मुझे देखिये, मैं किसी प्रकार की कठिनाई से घबराता नहीं हूँ। उन्होंने केवल पुस्तकों में ही विपत्ति शब्द पढ़ा था। एक बार उन विद्या विशारदजी पर सचमुच विपत्ति आ गई, तो वे दीन बन गये। उन्हें न अपने कर्त्तव्य का भान रहा और न विद्यार्थियों के सम्मुख दिये गये उपदेशों का ज्ञान।

अधिकतर कोरे किताबी ज्ञान वालों की दशा इन्हीं विद्वान जी के समान होती है। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की कहावत ऐसे डिग्रीधारियों पर पूरी तरह लागू होती है। सुख पाकर हँस देना और दुःख पाकर रो देना ही ज्ञान की सीमा होती है।

मनुष्य दुखों से हमेशा से घबड़ाता रहा है। कारण कि दुःखों के सहने की क्षमता रखना कोई साधारण बात नहीं है। बड़े-बड़े धीर-वीर ज्ञानी-यती-योगी घबड़ा जाते हैं। दुख आने पर मनुष्य अक्सर भूल जाता है कि ये विपत्तियां उसकी परीक्षा लेने के लिए आती हैं, विपत्ति को झेले बिना वह सुख प्राप्ति की कल्पना भी नहीं कर सकता। सोना कसौटी पर कसने के बाद ही परखा जाता है। विपत्ति रूपी प्रचण्ड अग्नि में तपने के बाद ही वह कुन्दन बनता है। विश्व के रचनाकार ने सुख कें साथ दुख को भी बनाया है। दुख न हो तो सुख का मूल्य क्या ? प्यास लगने पर दुःख की अनुभूति होती है, यदि प्यास ही न लगे तो फिर शीतल जल का क्या महत्व है ? जिस प्रकार धूप-छाया की भाँति सुख-दुःख साथ-साथ चलते हैं उसी प्रकार जय-पराजय, हानि-लाभ, जीवन-मरण आदि दिन-रात की भाँति साथ-साथ चलते हैं। आत्म ज्ञानी विपत्ति को एक ईश्वरीय वरदान के रूप में स्वीकार करता है। विपत्ति की कसौटी में ही वह अपने धैर्य, धर्मादि की परीक्षा कर लेता है।

कविवर रहीम ने भी विपत्ति के आगमन का स्वागत करते हुए कहा है कि—

'रहिमन विपदा हूं भली जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥'

हमारी संस्कृति के अमृत-कलश वेद ने विपत्ति के स्वागत में अपना नमन भी अर्पित किया है। अथर्ववेद का एक मन्त्र है—

'नमोस्तु ते निर्ऋते तिग्म तेजो, अयस्मयान् विचृता बन्ध पाशान।
यमो मह्यं पुनरित त्वांददाति, तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥'

अथर्व० ६: ६३: २

'हे मुझ पर आई भारी विपत्ति ! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि इस संसार में हम पर जो कष्ट, क्लेश, दुःख-दर्द आते हैं वे हमारे भले के लिये आते हैं। मेरे सुदृढ़ लौह-बन्धनों को अपने तीक्ष्ण तेज से काट दे तथा मुझे मन एवं बुद्धि के द्वारा ज्ञान युक्त बनाती हुई आनन्द लोकों की ओर बढ़ा दे।'

ये लोहे के बन्धन ही हमारे द्वारा किये गये पाप कर्म हैं। हम उनके बोझों से दबे रहते हैं और दबा हुआ आदमी ऊपर नहीं उठ सकता है।

इसलिए तू तीक्ष्ण तेज के साथ आ। तेरा सन्ताप जितना तीक्ष्ण तेज होगा उतनी ही भारी लौह बेड़ी मेरी कटेगी। यह मेरा दृढ़ विश्वास है। अतएव 'हे घोर विपत्ति! मैं तुझसे घबड़ाता नहीं हूं। पिछली बार जब तू आई थी तो मैं कुछ हल्का हुआ था, पर आज उस प्रभु ने तुझे फिर तीक्ष्ण तेज के साथ भेजा है। मेरे सुदृढ़ कराल लौह पाश अवश्य कट जायेंगे। अतः मैं तेरा स्वागत करके नमस्कार करता हूँ। साथ ही उस मृत्यु रूप प्रभु को भी नमस्कार करता हूँ। उसका रूद्र रूप भी शिव होता है तथा संहारक रूप भी परम कल्याणकारी होता है।'

इस मन्त्र का आशय यही है कि जो विपत्तियों से कतराते हैं, वे ईश्वरीय आज्ञा का उल्लंघन करते हैं। ऐसा ही एक मन्त्र यजुर्वेद में है :—

नमः सु ते निर्ऋते तिग्म तेजो, ऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम्।
यमेन त्वं याम्य संविदानोत्तमे, नाके अधि रोह यैनम्॥

—य० १२ ६३

इस मन्त्र की व्याख्या करते हुये स्वामी विद्यानन्द 'विदेह' अपने ग्रन्थ 'वेदालोक' में कहते हैं—

'विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में केवल अक्षर ज्ञान उपलब्ध होता है। वास्तविक शिक्षा तो केवल दुःखापत्ति की पाठशाला में ही प्राप्त होती है।' विद्यालयों या विश्वविद्यालयों की डिग्रियाँ या उपाधियाँ तो मिथ्याभिमान के बिल्ले और अज्ञान के दुमछल्ले हैं, जो दुःखापत्तियों की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर अनुभव की सीढ़ियों पर चढ़ कर उन्नति के स्वर्ण शिखर पर पहुंचते हैं। वे ही सुशिक्षित एवं सत्य-संज्ञान है। इसीलिए दुःखापत्ति के आने पर धीर मानव कहता है—हे कृच्छापते! तुझे सुस्वागत पूर्वक नमन है। विपत्ति में घबड़ाने से उसका भार पर्वत तुल्य हो जाता है और स्वागत करने से पर्वत के समान-विपत्ति भी फूल के समान हल्की हो जाती है। वीर विपत्तियों में आत्म शृंगार करते हैं और कायर हाहाकार करते हैं।

सुख की धार सुकोमल है और विपत्ति की धार तीक्ष्ण तेज है। तेज धार ही लौह शृंखलाओं को काट सकती है। हमारे अन्दर जो आसक्ति है, वही लौह शृंखला है। फिर आसक्ति भी तो बहुरूपा है। धन में आसक्ति लोभ बन कर, स्वजनों में आसक्ति मोह बन कर, अहम् में आसक्ति अहंकार बन कर, विषयों में आसक्ति काम बन कर और स्वार्थ में आमक्ति भ्रष्टाचार बन कर प्रकट होती है। संसार की हर बुराई संसार की हर अशुभ आसक्ति की ही उपज है और यही सब हमें नरक अर्थात् निम्न लोकों की ओर ले जाते हैं।

'काम, क्रोध, मद, लोभ सब, तात नरक के पंथ।'

आसक्ति के पाश कटते ही समस्त बन्धन स्वतः टूट जाते हैं और तब मानव जीवन मुक्त होकर शुद्ध-बुद्ध हो जाता है। शुद्ध-बुद्ध ही दिव्य आनन्द लोकों में विचरण करता है।

हमारा मन ही संकल्प विकल्प का नियामक है, इसलिये वह यम है और विचारों की नियामिका होने से बुद्धि यमी है। सुख से दोनों की नियामक शक्ति का ह्रास होता है और दुख की यज्ञ वेदी में तप कर मन निर्विकल्प एवं बुद्धि परिष्कृत हो जाती है। निर्विकल्प मन और परिष्कृत बुद्धि से ही संज्ञान की प्राप्ति होती है और संज्ञान के द्वारा ही मन उत्कर्षोन्मुख होता हुआ आनन्द लोक (अवस्था) को पाता है।

निर्ऋति (विपत्ति) जो यम-यमी, संयम और तितिक्षा (सहनशीलता) से सुसंगत रहता है, वही उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त करता है। कौन-सी ऐसी विपत्ति-धारा है जो यम-यमी की नौका से पार न की जा सके और कौन सी साधना है, जो इनके आश्रय से सिद्ध न की जा सके।

सांसारिक आपत्तियों की सीढ़ियों पर चढ़ कर हम उत्थान के उच्चतम शिखर पर पहुंचते हैं। ये विपत्तियां ही वह कसौटी है, जिन पर कस कर मानव महामानव की संज्ञा से विभूषित होता है। निर्ऋति ही मानव में जौहर जगाती है, उसे परिपक्व करती है और आनन्द लोकों की ओर जाने वाले विजयरथ पर आरूढ़ कराती है।

भगवान कृष्ण से उनके एक परम भक्त ने पूछा कि नाथ क्या कारण है कि आपको भजने वाले कष्ट पाते हैं और जो आपकी आज्ञा के विपरीत आचरण करते हैं सुख पाते हैं। कृष्ण ने कहा—'मेरा भक्त कभी कष्ट नहीं पाता है, हां पूर्ण भक्ति या पूर्ण समर्पण का अभाव ही कष्ट का जनक है।'

इस पर द्रौपदी ने कहा—'कृष्ण आप तो हमेशा यही कहा करते हैं, पर जब बीच सभा में दुःशासन मुझे निर्वसन कर रहा था, उस समय आप कहाँ थे ?' कृष्ण ने उत्तर दिया—'सुमुखि ! मैं तो तुम्हारे ही अन्दर था। जब तक तुम दूसरों को सहायता के लिए बुलाती रही, और जब तक तुम अपने हाथों से साड़ी पकड़े रही, मैं नहीं आ सकता था। लेकिन जैसे ही तुमने सबका आसरा छोड़ दिया, यहाँ तक कि अपने हाथों का भी, मैं स्वयं साड़ी बन कर प्रकट हो गया। यह मेरा विधान है कि जब तक जीव अपने स्वजनों या अपने अहम् पर आश्रित रहता है, मुझे नहीं पा सकता।

जिसका कोई अवलम्ब नहीं, केवल भगवान का ही सहारा है, उसी के लिए तो 'निर्बल के बल राम' कहा गया है। पाँचों पाण्डवों का दृष्टान्त

सामने है। कितनी विपत्तियाँ झेली उन सबने, कौरवों के कितने छल छद्मों को सहा, अपमान के कितने विषभरे प्याले पिये। क्या-क्या नहीं सहा ? पर क्या वे हताश हुए ? क्या उन्होंने कृष्ण का सहारा छोड़ा ? भगवान ने भी उनकी टेक रखी। उनके लिए गुरु बने, दूत बने, रक्षक बने, सेवक बने और सारथी भी बने। पाण्डव घोर विपत्तियों की धधकती भट्टी में तपकर कुन्दन की भांति निकले। उन्ही के कारण गीता का प्रणयन भी हुआ, जो जीवन के आनन्द उत्कर्ष, चिरन्तन एवं परम लक्ष्य का बोध कराने वाली अमृतवाणी है।

कृष्ण का जीवन भी संघर्षों से भरा

स्वयं भगवान कृष्ण का जीवन संघर्षों का एक उज्ज्वल इतिहास है। कंस ने उनके मारने के लिए क्या-क्या षड़यंत्र रचे, पर कृष्ण के साहस धैर्य एवं ज्ञान के कारण सभी निष्फल हो गये। आपदाएँ स्वयं पराजित हो गई और नन्द बाबा की गायें चराने वाले गोपाल इन्हीं विपत्तियों की सीढ़ियों पर चढ़ कर जीवन के चरम एवं परम शिखर तक पहुँच कर योगेश्वर जगत नियन्ता बन गये।

महाराज युधिष्ठिर ने जब राजसूय यज्ञ किया, सभी को कार्य वितरित किये गये। पर भगवान श्री कृष्ण ! उन्होंने सबकी जूठी पत्तलें उठाने का दायित्व लिया। प्रभुता के सर्वोच्च शिखर का वासी प्रभु पत्तलें उठाएगा। पर उन्होंने यह निम्नतम कार्य भी प्रसन्नता के साथ अपने ऊपर ले लिया। इसी कारण तो जब यज्ञ विधान के अनुसार सबसे बड़े की पूजा का प्रश्न उठा तो कृष्ण को ही उपयुक्त माना गया। सभी उपस्थित राजाओं ने समर्थन दिया, पर शिशुपाल ने मिथ्यादम्भ के कारण अपशब्द कह कर उनका विरोध किया। फिर परिणाम क्या हुआ ? वही जो एक दम्भी एवं अहम् भावना से ग्रस्त आदमी का होता है। सुदर्शन चक्र से कृष्ण ने उसका मस्तक विच्छेद कर दिया।

राम का चरित्र भी एक उदाहरण

मर्यादा पुरूषोत्तम राम का आदर्श चरित्र भी हमारे सामने है। बचपन से ही उन्होंने मानो विपत्तियों को आमन्त्रण देना प्रारम्भ कर दिया था। पहले वे विश्वामित्र के साथ गये, सुबाहु आदि राक्षसों का विनाश किया। फिर राजा जनक के द्वारा रचित सीता स्वयम्वर में परशुराम जी का सामना किया। युवराज पद के अधिकारी होने पर भी पूरे चौदह वर्षों तक वन में धूप-शीत वर्षा की विपत्तियां सही। यही नहीं, सीताहरण का दुर्योग भी उन्हें देखना पड़ा। फिर सेतु बाँध कर महाबली रावणादि

राक्षसों का वध किया। तभी तो वे असुरनिकन्दन कहलाए। पर हर विपत्ति में उन्होंने न संयम छोड़ा, न धैर्य और न मर्यादा ही भंग की।

ऐसे न जाने कितने युग पुरुषों के उदाहरण हमारे सामने हैं। हरिश्चंद्र-शैव्या, नल-दमयन्ती का आख्यान, राजा मोरध्वज की संघर्षमयी गाथा, ध्रुव-प्रह्लाद की पौराणिक कथा, पर सभी निर्क्रति से न तो डरे और न संज्ञान ही त्यागा।

ऐतिहासिक युग में भी राणाप्रताप, छत्रपति शिवाजी सरीखे नर शार्दूलों ने विपत्तियों की भट्टी में ही अपने कुन्दन सरीखे व्यक्तित्व को निखारा।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने कारावास की घोर यातनाओं के मध्य ही "गीता रहस्य" की रचना की।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी सुखों की सुमन-शय्या त्याग कर शूलों पर अपनी सेज बिछाई। कितने उदाहरण दिये जायें?

विपत्तियां ही आदमी को माँजती हैं, उसका शृंगार करती हैं एवं लोक वन्दना के योग्य बनाती हैं। यदि हम विपत्ति को न्यौता देकर बुलालें तो वह हमारे लिए सुखकर बन जाती है। सपेरा काल के समान सर्प को पास ही रखता है, वैसे ही बाघ को पालने वाला भी बाघ के हिंसक स्वभाव से घबड़ाता नहीं है।

विपत्ति और सुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सिक्का उठा लेने पर हमें सुख अनायास ही मिल जाता है। इसीलिए हमें विपत्तियों से हताश न होना चाहिये। उन्हें ससम्मान निमन्त्रण देना चाहिए। सुख तो उनका दास है, अनुगामी है। आओ, हम आपदाओं को अपने पास बुलालें। आओ; हम विपत्तियों के शूलों को गले से लगा लें। आओ, हम दुःख के विष भरे प्याले हँस-हँस कर पीलें। देखो, आनन्द लोक हमारी प्रतीक्षा कर रहा है।

साप्ताहिक नवजीवन सितम्बर १९७९

कामना और वासना : विनाशकारी अग्निशिखाएँ

मानव-मन में किसी कामना के प्रादुर्भाव के साथ ही वासना का भी जन्म होता है। यह एक शाश्वत प्राकृतिक प्रक्रिया है। गीता के द्वितीय अध्याय के ६२-६३ श्लोक में कही गई बात सर्व माननीय है। जब मनुष्य के मन में कामना प्रकट होगी, तो वह उसे पूरी करने का प्रयत्न करेगा। कामना-पूर्ति हो गई, तो उसमें अभिमान आयेगा और यदि वह अपूर्ण रह गई, तो अपनी असफलता पर उसका क्रुद्ध होना स्वाभाविक है। बात और अधिक स्पष्ट करने के लिये एक उदाहरण लें। एक सज्जन प्रतिदिन समाचार पत्र पढ़ते हैं। एक दिन हठात उनकी दृष्टि उसमें छपे हुए एक विज्ञापन पर पड़ती है, जिसमें एक उत्तम कोटि की बिकाऊ मोटर कार का विवरण है। उसे पढ़ते ही उनका मन उस मोटर कार की ओर आकर्षित होता है, उसे खरीद लेने की एक प्रबल कामना उनके हृदय में उपजती है। यह प्रस्ताव वे सज्जन अपने बड़े भाई के सामने रखते हैं। बड़े भाई अनावश्यक खर्च के विरोधी हैं। अत: उस प्रस्ताव पर वह अपनी असहमति व्यक्त करते हैं। प्रस्ताव रखने वाले सज्जन को अपनी कामना पूर्ति में अपने ही भाई का बाधक होना असह्य हो उठता है। उन्हें क्रोध आता है। अब वासना युक्त कामना के साथ क्रोध का भी संयोग हुआ। कड़वी लौकी की बेल नीम के पेड़ पर चढ़ गई। परिणाम का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

वासना और क्रोध मिलकर सम्मोह का आह्वान करते हैं। सम्मोह में दो वृत्तियाँ हैं। गर्व और ईर्ष्या। किसी के पास मोटर है, मोटर खरीदने की सामर्थ्य है. तो उसे अपनी स्थिति पर गर्व होना स्वाभाविक है। किसी दूसरे के पास ये दोनों ही नहीं हैं, अत: वह पहले से ईर्ष्या करता है। गर्व और ईर्ष्या मिलकर स्मृति विभ्रम की सृष्टि करते हैं। इसके फलस्वरूप जो कुछ कर्म-धर्म और ज्ञान अन्त:करण में होता है; उसका लोप हो जाता है। स्वार्थ-सिद्धि की प्रबल वासना जागती है। इस वासना की पूर्ति के लिये अक्षम मनुष्य जालसाजी, जुआचोरी, कपट, झूठ. प्रवंचना आदि किसी भी गर्हित उपाय का सहारा लेने से नहीं चूकता। उसका मन कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करने में असमर्थ हो जाता है। कोई भी उपदेश उसके लिये व्यर्थ होता है। ऐसी अवस्था में धर्म और मोक्ष तो दूर की बात, कर्म नामक पुरुषार्थ को प्राप्त करने की योग्यता भी नहीं रह जाती। आध्यात्मिक जगत में इसे ही कहा गया है—बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।

संसार में रहने पर विषय-चिन्तन अनिवार्य है। विषयों का चिन्तन आध्यात्मिक जीवन को पथ भ्रष्ट करना है। तप या संन्यास ही श्रेय का मार्ग नहीं है। गीता कहती है कि सन्यास लेकर कोई कहाँ भागेगा ? शरीर है, इन्द्रियाँ हैं, वाह्य जगत में शब्द स्पर्शादि है। इन सब का परित्याग करके चले जाने के लिये स्थान कहाँ है ? देह का विनाश होगा तो संचित कर्म-बीज एक दूसरा शरीर तैयार करके ला देंगे। आपको मुक्ति नहीं देंगे छोड़ेंगे नहीं। प्रश्न उठता है कि तब उपाय क्या है ? उपाय यही कि प्राज्ञभूमि में स्थित हो जाओ (स्थितप्रज्ञ हो जाओ) जो स्थितप्रज्ञ है वह शान्ति प्राप्त करता है (स शान्तिमाप्नोनि)। यह भूमि उत्तरोत्तर ऊँची उठती चली गयी है। ब्राह्मी स्थिति पर्यन्त इसका विस्तार है। साधक को अविराम चलना होगा। चलने के मार्ग में इस भूमि को दृष्टि में रखकर ही यात्रा करनी होगी। बद्रीनाथ की यात्रा करने वाले हृषीकेश जाकर लौट आते। गीता के द्वितीय अध्याय के जिन दो श्लोकों का उल्लेख ऊपर किया है वे इस प्रकार है।

ध्यायतो विषयान्पुन्सः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

(श्रीमद्भागवद्गीता अध्याय २)

इस सारे प्रकरण में बुद्धि को स्थिर रखने की बात कही गई है, इसलिए बुद्धि की अस्थिरता का, बुद्धिनाश का मनोवैज्ञानिक विश्लेपण करना आवश्यक प्रतीत होता है। बुद्धि को स्थिर रखने का मूल आधार इन्द्रियों पर विजय पाना है। इन्द्रियों को विषय में कैसे खींचते हैं ? इसकी मनो-वैज्ञानिक प्रक्रिया क्या है ? श्री कृष्ण कहते हैं कि विषयों का बार-बार ध्यान करने से, चिन्तन करने से, उन पर मन को टिकाये रखने से ही सारा झगड़ा पैदा होता है। जब विषयों का संग होता है, तब बार-बार उस संग से, विषयों के ध्यान से कामना प्रादुर्भूत होती है। विषयों के प्रति आसक्ति उत्पन्न करती है। लोक व्यवहार में भी हम देखते हैं कि मनुष्य किसी कुत्ते के साथ भी कुछ समय तक रह ले, तो उसके मन में कुत्ते के प्रति आसक्ति और अनुराग की अनुभूति होने लगती है। उसे साथ रखने की कामना होती है। कामना कभी पूर्ण होती है, कभी अपूर्ण रह जाती है। प्रायः कामना पूर्ति में नाना प्रकार के व्यवधान उपस्थित होते हैं। कामना करने वाला क्रोध में बौखला उठता है। गीता में कामना को क्रोध का कारण माना गया है। क्रोध में मनुष्य की दो महत्वपूर्ण शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं—

विवेक शक्ति और स्मृति शक्ति। क्रुद्ध मनुष्य को आगा-पीछा कुछ भी नहीं सूझता। वह विवेक और विचारों से शून्य हो जाता है। गीता कहती है—"क्रोधाद्भवति संमोहः।" संमोह का अर्थ है विवेक का नष्ट हो जाना। स्मृति शक्ति का नाश होने से क्रोधी को यह स्मरण नहीं रहता कि कौन क्या है—माता-पिता, गुरु, भाई, मित्र सारे सम्बन्धों और उनमें निहित मर्यादाओं का उसे बोध ही नहीं हो पाता। जिसकी विचार शक्ति और स्मृति शक्ति नष्ट हो गई, उसकी बुद्धि नाश होगी ही और जिस मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो गई उसका विनाश अवश्यम्भावी है।

काल परिवर्तन के साथ-साथ धर्म, नीति और सत्य का भी शनैः शनैः लोप होता जा रहा है। यह स्थिति अत्यन्त दुःखद एवं दुर्भाग्यपूर्ण है। वर्तमान युग के सर्वमान्य मनीषियों में से एक स्वामी चिन्मयानन्दजी के सार-गर्भित विचार इस प्रसंग में उल्लेखनीय और चिन्तनीय हैं। स्वामीजी कहते हैं कि स्वार्थ की प्रवृत्ति विनाशकारी है। आलस्य सबसे बड़ा पाप है। वह सारे पापों को जन्मदाता है। जो व्यक्ति काम न करे किन्तु भरपूर भोजन की मांग करे, वह हीन वृत्ति का जीता जागता प्रतीक है। स्वामीजी के शब्दों में "संन्यास जीवन की पूर्वावस्था है, किन्तु संन्यासी के वेश में ठगी करते देख कर किसे आश्चर्य न होगा? जिस लक्ष्य की पूर्ति के लिये उन्होंने गेरुए कपड़े पहन रखे हैं, उसकी उन्हें चिन्ता भी नहीं है। उस दिशा में वे किंचित प्रयास भी नहीं करते हैं। इस पवित्र वेश में आते समय प्रायः सभी की धारणा सच्ची थी उद्देश्य निश्चित था, परन्तु समय बीतने पर वे उस उद्देश्य को ही भूल गये, जिसके लिये उन्होंने पारिवारिक जीवन का और समाज के प्रति अपने व्यक्तिगत कर्तव्य का त्याग किया। नाना प्रकार के वेश धारण कर लेने से आध्यात्मिक सफलता नहीं मिल जाती, केवल बिना परिश्रम किये पेट भर सकता है।

आत्मरक्षा की प्रवृत्ति और धन एवं अधिकार को तृष्णा से प्रेरित आज जीवन के हर क्षेत्र में पथ-भ्रष्टता दिखाई देती है। झूठे नेता, नकली पुलिस, भ्रामक कलाकार और मिथ्याप्रवचनकर्त्ता सभी आडम्बरी केवल अपने बाहरी वेश और दिखावटी व्यवहार का ढोंग करते हैं और दूसरों को ठगते हैं। वास्तव में मिथ्याचार भी मनुष्य के जीवन में उतना ही प्रख्यात है जितना ईमानदारी के द्वारा उत्कृष्ट जीवन प्राप्त करना प्रसिद्ध है।

एक घटना का उल्लेख यहाँ प्रासंगिक है। गाँधीजी के साबरमती आश्रम को स्थापित हुए कुछ ही समय बीता था। स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक बापू के आश्रम में रहने की इच्छा लेकर आये। बापू को जब उनका

समाचार पहुंचाया गया, तो उन्होंने स्वामीजी के पास सन्देश भिजवाया। आश्रम में गेरुआ वस्त्रों को धारण करके आपका रहना उचित न होगा, क्योंकि आश्रम के कार्यकर्त्ता गाँवों में जब सेवा-कार्य करने के लिये जायेंगे, तो ग्रामवासी गेरुए वस्त्रों को देखकर आपसे सेवा लेने के बदले आपकी सेवा करने के लिये दौड़ेंगे। स्वामीजी की समझ में बात आ गई और वे आश्रम से चले गये।

जो व्यक्ति अध्यात्म पथ पर अग्रसर होने का प्रयास नहीं कर रहे हैं, ऐसे प्रमादी व्यक्तियों के लिये वासना की हल्की हवा भी उच्च आकांक्षाओं को उड़ा ले जाने में समर्थ होती है। भोग की इच्छा मनुष्य को अपने आदर्शों और तपश्चर्या से गिरा देती है।

पाशविक वृत्ति में जीवन व्यतीत करने में मनुष्य को कोई कष्ट नहीं होता, 'क्योंकि यह पतन का रास्ता है। पहाड़ पर से फिसलना और गिरना, उसकी चोटी पर चढ़ने से कहीं आसान है। विकास तो प्रयत्न, संघर्ष, श्रम और कष्ट का फल है। बिना प्रसव पीड़ा के कोई जन्म सम्भव नहीं है।

यही माया है। वासना का खेल ही, वासना ही हमें पाप में ढकेलती है और जब हम आध्यात्मिक जीवन के उच्च स्तर पर आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं और अपने में उच्चकोटि के गुण लाना चाहते हैं तो यह वासना हमें खींचकर पीछे ढकेलती है।

विनाशकारी स्वार्थ प्रवृत्ति, सर्वनाशिनी वासना और विकारों के दल-दल में फेंक देने वाली कामना का सर्व प्रकार परित्याग ही हम सबके लिये श्रेयस्कर है। विनाश के इन भयानक गर्तों में गिरने से स्वयं को यदि हम रोक सकें तो हमारा जीवन दिव्य होगा और तप एवं संन्यास के बिना ही इस जगत में हम समस्त अलौकिक विभूतियों को प्राप्त करने में समर्थ होंगे।

देश और समाज साप्ताहित ६-९-७९

चन्दे की परिभाषा

चन्दा माँगने की और चन्दा देने की, दोनों की एक ही परिभाषा समझी जाती है। बहुत पुराने काल से चन्दा वे देते हैं, जिसके पास धन है; दिया उन्हें जाता है, जिनको किसी आपत्ति का सामना करना पड़ता है, या जो किसी संकट में हैं। धर्मशास्त्रों में, काव्यग्रन्थों में, चन्दा देना, दान देना आदि विषयों की चर्चा बराबर आती है। आधुनिक जमाने में चन्दा और दान दो अलग विषय समझे जाते हैं। सामाजिक कार्यों में, धार्मिक कामों में और राजनैतिक पार्टियों के कामों को आगे बढ़ाने में चन्दा दिया जाता है। यदि चन्दे का इतिहास लिखा जाय तो एक अच्छा और रोचक ग्रन्थ बन सकता है, लेकिन इधर चन्दा एक विवाद तथा एक नये मनन का विषय बनता जा रहा है। केन्द्र की सरकार में जब परिवर्तन आते हैं तो सबसे पहले पुराने चन्दा---दाताओं को नये प्रशासकों से और नई सरकार के नेताओं से नाराजगी मोल लेने का भय रहता है। सवाल यह है कि जिन्होंने पुरानी सरकार को चन्दा दिया है, उन्हें कष्टों का सामना करना पड़ता है।

महाभारत काल में आपस में भाइयों में परस्पर लड़ाई हुई। उस समय प्रजा को भारी संकट का सामना करना पड़ा। वह राजा युधिष्ठिर की सहायता करे या राजा दुर्योधन की। यह मामला सारे ही भारत के राजाओं के लिए चिन्तन का विषय बन गया था। उस समय पाण्डवों की मदद में प्रमुख रहे श्रीकृष्ण। यह सवाल मुख्य बन गया कि जिधर धर्म है, उधर धर्मपरायण जनता अवश्य रहेगी। दुर्योधन की तरफ जो गये, उनके अपने विचार थे। हिन्दूकाल के बाद मध्यकाल आया। उसमें जनता की सहायता जब नहीं मिलती, अहिन्दू शासकों द्वारा लूट होती, धर्म परिवर्तन होता और स्त्रियों का अपहरण भी होता था। जहाँ उन्हें सहयोग मिलता, वहां पर इस तरह का कार्य नहीं किया जाता था। अकबर को जयपुर, बीकानेर आदि में सहयोग मिल जाने से इन इलाकों में लूटपाट नहीं होती थी। राणा प्रताप के राज्य में वर्षों तक आक्रमण हुए, गांव जलाना और धन लूटना जारी रहा। काशी का इतिहास अलग मिलता है। काशी विशेष रूप से चाँदी और रेशमी वस्त्र से लदे व्यापार की मंडी थी। अहिन्दू राज्यों के सूबेदार चारों तरफ आतंक फैलाने के लिए जाते और धन की लूट किया करते। उस समय काशी पर जब जब उनका आक्रमण हुआ, काशी के सारे व्यापारी एकत्र होते, उस सूबेदार के पास जाते और उसको पूछते आपको कितना धन मिलने से सन्तोष होगा, ताकि आप लूट नहीं करें। जो तय होता, उतना रुपया सब मिलकर उसे सौंप देते। उसे लेकर वह चला जाता था। १९वीं सदी में जयपुर में भी यही हुआ। जयपुर को मराठों की बड़ी सेना ने घेर लिया, तो

उसे जयपुर के सेठ-साहूकारों ने धन दिया। राजस्थान में डूंगजी और जुहारजी दो बड़े धाड़ेती हुए। वे गांव के बाहर रुक जाते। अन्दर संदेश भिजवाते। गांव के सेठ और साहूकार मिलकर धन से उनको संतोष कराते। यह उस जमाने की बात थी। विशेष प्रभाव से धन वसूला जाता था।

जो रुपया लुटेरों को, अहिन्दू सूबेदारों को और मराठों को दिया जाता था, वे प्रायः व्यापारी वर्ग ही देते थे और बाद में वे दुबारा अपना व्यापार करते हुए आर्थिक क्षति की पूर्ति कर लिया करते थे।

अंग्रेजों का जमाना आया, उसका हाल इसी तरह का था। आतंक से वे उस समय के नवाबों से, सेठ-साहूकारों से विभिन्न बहानों के जरिये धन वसूलते थे। कह सकते हैं, जबरन धन लेते थे। जगतसेठ से पहले क्लाइव ने चन्दा लिया, फिर उन जगतसेठों का उसने संहार भी कर दिया। इसी तरह जगतसेठों के दो भाइयों को मुंगेर में मुर्शिदाबाद से भागे हुए नवाब ने गंगा में डुबाकर इसलिए मार दिया, क्योंकि उन्होंने अंग्रेजों की सहायता की थी। चन्दा देने के कारण प्रतिशोध का भागीदार भी बेचारों को होना पड़ा था। ब्रिटिशकाल में यह प्रतिशोध की भावना उस समय फिर उग्र होने लगी थी, जब कि कांग्रेस का स्वतन्त्रता संग्राम आरम्भ हुआ। यों सभी शहरों में और जिलों में ब्रिटिश सरकार के कलेक्टर, बड़े हाकिम जनता से चन्दा लिया करते थे और अकाल में स्कूल के निर्माणादि में, अनाथालय के बनवाने में उसका सदुपयोग करते थे। जो बड़ा चन्दा दिया करते थे, उनको सर की पदवी या रायसाहबी रायबहादुरी मिलती थी। पर अगर ब्रिटिश हाकिमों को यह मालूम हो जाता कि इस व्यक्ति ने कांग्रेस को चन्दा दिया है तो उसकी खोज तलाश शुरू हो जाती थी। जब गांधीजी, सेठ जमनालाल बजाज, मोतीलाल नेहरू, मदन मोहन मालवीय बम्बई में १९२१ में तिलक स्वराज्य फण्ड के लिए १ करोड़ रुपया इकट्ठा करने, अर्थात उसके लिए चन्दा लेने का प्रयास कर रहे थे, उस समय बम्बई के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्डट ने और वहां के विभिन्न जिलाधीशों ने सभी बड़े व्यापारियों को बुलाकर यह धमकी दी थी कि अगर तुम लोग गांधी को चन्दा देगा, हम तुम्हारे साथ बहुत बुरा व्यवहार करेंगे। तो भी देने वालों ने दिया। उनमें से बहुतों को असुविधा भी उठानी पड़ी थी। जैसे-जैसे कांग्रेस का आन्दोलन बढ़ता गया, ब्रिटिश सरकार का कोप उनपर विशेष बढ़ता गया, जो कांग्रेस की मदद रुपयों-पैसों से करते थे। काम चलता गया और आगे बढ़ता गया। कुछ लोगों को चन्दा देने के एवज में जेल भी जाना पड़ता था। उसे वे देश प्रेम का एक अंग मानते थे। दूसरे प्रकार के लोग वे थे, जो ब्रिटिश सरकार के अफसरों

को इसलिए चन्दा देते थे, ताकि राज्य के तथा व्यापार के कामों में असुविधा न मिले।

१९४७ में जब स्वतन्त्रता आई, कांग्रेस का राज हो गया। तब सारे ही देश में काँग्रेस के कामों में चन्दा देने में कोई रुकावट नहीं रह गई। कोई रोकथाम करनेवाला भी नहीं रहा, लेकिन एक नई समस्या सामने आई। नेताओं में परस्पर प्रतिस्पर्द्धा चलती थी। एक नेता को चन्दा दिया, दूसरा प्रतिपक्ष का नेता रुष्ट हो गया। कभी मौका मिल गया, रुष्ट नेताजी की नाराजगी का फल भी हाथोंहाथ भोगना पड़ता था। इस तरह १९४७ के बाद से चन्दे की दुनिया में नये-नये रोचक प्रसंग आने लगे थे। व्यापारी वर्ग एक धर्मसंकट महसूस करता था पर उसे चन्दा देना ही पड़ता था। राजी से या दबाव से। और कांग्रेस का राज आते ही, एक नयी प्रवृत्ति भी सामने आई। व्यापारी वर्ग को धारासभाओं में, अखबारों में, और सार्वजनिक मंचों से कोसा भी जाने लगा। व्यापारी धन कमाने के लिए व्यापार करता है। वह चन्दा न दे तो कोप का भाजन बने और दे तो मुश्किल। यह विचार करने का विषय है—व्यापारियों को कौनसा उपाय ग्रहण करना चाहिए ?

लगभग २०-२५ वर्ष पहले की बात है। उस समय हम लोग कलकत्ता में पं० जवाहर लाल नेहरू को शेयर मार्केट में लाये। उनका भाषण करवाया। उस समय शेयर मार्केट के भाइयों ने एकत्र होकर १ लाख से ज्यादा रुपये का चन्दा एकत्र किया और उसे थैली के रूप में नेहरू जी को भेंट किया। उस समय सरदार पटेल भी यहीं कलकत्ता में थे। शायद कलकत्ता में कांग्रेस की बड़ी सभा होने वाली थी। जो थैली नेहरू जी को दी गयी, सरदार पटेल को भी उस थैली में से आधा रुपया दिया गया। इसका उल्लेख इस लिए किया गया है कि बड़े बड़े नेताओं में भी यह स्पर्द्धा चलती थी।

अब कलकत्ता की कांग्रेस का एक विषय लें। जब श्री अतुल्य घोष बंगाल कांग्रेस के सभापति बने, मेरा बंगाल की कांग्रेस से बराबर सम्बन्ध था। मुझे उनकी तरफ से कहा गया कि जिला कांग्रेस कमेटियाँ को आप कुछ-कुछ मदद जरूर करते रहेंगे तो उनको कामों में सुविधा रहेगी। एकदफा मुर्शिदाबाद कांग्रेस के सभापति तथा मंत्री कलकत्ता आये। मुझसे मिले और कुछ मांग की। वहाँ के कांग्रेस-आफिस के लिये कुछ सामान तथा कुछ नगदी रुपये मैंने उनको दिलवाये। श्री अतुल्य बाबू को जब पता चला, संयोग से वे उस समय बीमार थे। बसन्तलाल जी मुरारका जब उनसे मिलने गये, उन्होंने बहुत नाराजगी जाहिर की, मुर्शिदाबाद कांग्रेस कमेटी को

मदद दिये जाने के बारे में और कहा कि बिना मुझसे पूछे यह मदद क्यों दी गयी ? मुझे बुलाया। बसन्तलालजी के साथ मैं गया। बहुत नाराज होकर उन्होंने अपनी बात कही। मैंने कहा कि आपने ही तो कहा था कि जिला कमेटियों को मदद करनी चाहिए आपने तो यह नहीं कहा था कि मुझसे पूछ-पूछ कर करो। मुझे जरूरत ही क्या थी, जो उन्हें रुपया और सामान देता ? आप इतना नाराज होते हैं, यह आपका न्याय नहीं है। इतने में संयोग से श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन आ गये। वे उनकी बात सुनकर बहुत नाराज हुए और बोले कि उन्होंने तुम्हारे कहने से दिया है। तुम्हारी यह बात ठीक नहीं और मुझसे कहा कि आप जाइए, उनको कहने दीजिए।

उस समय प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने १९५७ के चुनाव के लिए ३ करोड़ रुपये तय किये कि इतना इकट्ठा किया जाना चाहिए। पं० बंगाल में मुख्यमंत्री श्री विधानचन्द्र राय थे, उनसे कहा गया कि आप ७५ लाख चन्दा करके भेजिये। उन्होंने कलकत्ता के बहुत बड़े-बड़े व्यापारियों को अपने पक्ष में बुलाया। संयोग से मुझे एक बहुत बड़े उद्योगपति के साथ जाने का मौका मिला। उनके कमरे में बहुत बड़े-बड़े व्यापारी और उद्योग-पति उपस्थित थे। कुछ देर तो विवाद चला। एक डेढ़ घण्टे में सारा रुपया देना तय हुआ। चन्दा मिलता है सत्ता के जोर से और भय के जोर से, यही बात धीरे-धीरे राजनीति में प्रमुख होती गयी। बड़े-बड़े व्यापार करने वालों को इसी भय के कारण सत्ताधारियों को चन्दा देने के लिए मजबूर होना पड़ता है। बिना प्रभाव के चन्दा नहीं रह गया है। अपना व्यापार सुचारु रूप से चलाने के लिए, जिनके हाथ में सत्ता रहती है, उनको खुश करने के लिए व्यापारियों की तरफ से प्रयत्न होता रहता है। न्यायतः यह प्रयत्न करना नहीं चाहिए। पर देश में कानूनों का ऐसा जाल छा गया है कि कुरसी पर बैठने वाले प्रभावशाली व्यक्ति उन कानूनों के कारण अपनी चाल चलते रहते हैं, व्यापारी दुखी होते हैं। उनके बचाव का यही रास्ता रह गया है कि वे चन्दा दें और अपने लिए व्यर्थ जंजाल से बचें रहें।

कांग्रेस का शासन गया, नई पार्टी का शासन आया। अब सबसे पहला प्रश्न है कि आज व्यापारी क्या करे ? व्यापारी वर्ग तो उगते हुए सूरज को नमस्कार करते हैं। जिसके हाथ में सत्ता है, उसे खुश करने के लिए परवश और विवश और अवश हो जाते हैं। भरसक प्रयत्न और प्रयास सरकारी मशीनरी में नीचे से ऊपर तक करने पड़ते हैं। लेकिन राजनीति में विरोधी पक्ष भी है। वह इस चन्दे के प्रश्न पर अपना अधिकार या विरोध या प्रतिशोध अवश्य करते हैं और व्यापारी वर्ग बीच में चक्की के

दो पाटों में दवता या दवाया जाता है। एक और उदाहरण अपनी बात साफ करने के लिए जरूरी है, बड़ा ही मार्मिक है। आसाम तथा बंगाल का आपसी मतभेद बराबर रहा है। उसने जोर पकड़ा। एक ही व्यापारी आसाम में भी काम करता है और बंगाल में भी। कुछ व्यापारियों का काम आसाम में चलता है और बंगाल में भी, दोनों जगह होता है। जब चुनाव में सहयोग देने के लिए सत्ताधारी दल को जीप, मोटर और नकद चन्दा भी दिया। यह खबर बंगाल के कार्यकर्ताओं को मिली। बस, रोष बंगाल के व्यापारी वर्ग पर उतारा गया। कूचबिहार के व्यापारियों की दूकानें लूटी गयी, खूब नुकसान उनको पहुंचाया गया। कारण यह बताया गया कि यहाँ के व्यापारियों ने आसाम में वहाँ के लोगों को मदद दी। खबर सुनकर हम लोगों में विचार हुआ और तुरन्त हमलोगों ने यहाँ के कांग्रेस के आफिस में इसका प्रतिवाद किया। उस समय वहाँ·कूचबिहार की स्थिति का जायजा लेने के लिए यहाँ की कांग्रेस के अधिकारियों से कहा। श्री आनन्दीलाल पोद्दार, वसन्तलालजी मुरारका, नन्दकिशोर जालान और मेरा नाम वहाँ जानेवालों में था। हम चारों आदमी जाने के लिए तैयार हुए। वहाँ का हाल बुरा था। सारी रिपोर्ट यहाँ की सरकार को दी गयी। कूचबिहार में उनका नुकसान हुआ था. उन विचारों के दुर्भाग्य का क्या हाल बयान किया जाये। चन्दा किसको दिया, किसने उसका प्रतिशोध किससे लिया ?

चन्दा जो भी मांगते हैं वह हमें देना ही पड़ता है। आज का चन्दा वह चन्दा नहीं हैं, जब सारे समाज में उस पर पहले विचार होता था, फिर उस चन्दे की सूची पहले बनायी जाती थी और फिर उसके अनुसार लोग अपना अपना चन्दा खुशी के साथ दे दिया करते थे। आज तो एकदम नक्शा बदला हुआ है। हमारे वड़े-बड़े व्यापार और उद्योग के कारण चन्दा न देना आफतों को बुलाना है, स्वयं संकटों को अपने दरवाजे पर न्योता देना है। अब दूसरी पार्टी का राज आ गया। कांग्रेस का शासन चला गया है। पहले की जो पार्टी थी, उससे इस पार्टी का गहरा मतभेद हो चुका है। लेकिन दो पार्टियों के मतभेद से क्या व्यापारी को तकलीफ मिलनी चाहिए। यह सबके सोचने का विषय है। इस बार जो आम चुनाव हुए, उसमें चन्दा दिया ही गया और उसे सत्ता ने प्रभाव से लिया हो। किसने किसको कितना दिया। यह प्रश्न उस समय के प्रभाव और सत्ता के विषय का था। आज इस पर उचित विचार होना चाहिए। चन्दा देने से अगर जेल जाना है तो फिर न देने से क्या फांसी नहीं होगी ? इन दोनों का भी न्याय कौन करेगा ? न्याय तो होगा ही, यह ईश्वरीय विधान है।

दहेज विरोधी अभियान

लेन देन दिखावा पर रोक जरुरी

मनुष्य समाज का एक घटक है और समाज उसकी निर्मिति हैं। मनुष्य समाज सेवी एक सा है। केवल देश, काल और पात्र का अन्तर होता है। उसका आचरण भी सर्वत्र समान है। इसलिए समाज का आचरण भी सर्वत्र समान होता है। समाज को चलाने के लिए नियम-उपनियम बनाये जाते हैं जिससे मनुष्य का आचरण अनुशासित होता है। अनुशासन ही समाज का प्राण होता है। अनुशासन भंग करने वाले को समाज अपने विधान के अनुसार दण्डित करता है। इस विधान का निर्माण दीर्घ अवधि में समाज के अग्रणी सदस्य करते हैं जिन्हें संत या कालपुरुष की संज्ञा दी जाती है। लेकिन जिस तरह पानी एक जगह जमा रहने पर दुर्गन्ध देने लगता है, उस तरह समाज भी रुढ़ हो जाने पर अनेक कुरीतियों का शिकार हो जाता है। प्रवहमान समाज में कुरीतियाँ जड़ नहीं जमा पाती क्योंकि कालान्तर में रीति-रिवाजों का रुख बदलता रहता है। रूप-परिवर्तन अथवा संशोधन की यह प्रक्रिया भी समय-समय पर होनेवाले कालपुरुष पूरी करते रहते हैं।

दहेज भी एक सामाजिक कुरीति है। किसी समय इसकी आवश्यकता रही होगी, लेकिन वर्तमान संदर्भों में यह अभिशाप बन गयी है। जाहिर है कि दहेज विरोधी अभियान इसी कुरीति के उन्मूलन का प्रयास है जिसमें आज हमारी सरकार भरपूर योग दे रही है। फिर भी अभी समाज में इस कुरीति का प्राबल्य है। अतः इसे मिटाने के प्रयास भी उतने ही प्रबल करने होंगे।

कुछ काल पहले यह माना जाता था कि दहेज प्रथा की जड़ें अज्ञान अशिक्षा में हैं। अतः ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रचार-प्रसार होता जायगा, त्यों-त्यों इसका विनाश होता जाएगा। लेकिन वह धारणा सहीं नहीं निकली। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ यह कुरीति भयंकर से भयंकरता होती गई। अच्छे पढ़े-लिखे और कमाऊ वर की कीमत दहेज के बाजार में ऊंचे चढ़ती गई। अतः अब इस समस्या के बारे में पुनर्विचार किये जाने की आवश्यकता प्रखर हो गई है।

अभी हाल में मैंने विश्वमित्र' (कलकत्ता) में डा० शारदा जैन का एक लेख पढ़ा था जिसमें लेखिका ने दहेज, बड़ा परिवार और दुराचारी पति को समाज के तीन शत्रु घोषित किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि

दहेज प्रथा समाज की शत्रु है लेकिन प्रश्न यह है कि यह बन्द कैसे हो ? क्या जोर जबरदस्ती या कानूनी की मार से ही इसे मिटाया जा सकता है ? इनमें शक नहीं कि कानून एक बड़ा हथियार है। जिसका इस्तेमाल कमजोर और दुष्ट लोगों के विरुद्ध किया जाना वांछनीय है। लेकिन मेरा अपना अनुभव यह है कि कानून या जोर-जबरदस्ती से इसका पूर्ण उन्मूलन सम्भव नहीं है, क्योंकि मानव-बुद्धि इतनी प्रखर है कि वह कानून से बचकर कोई दूसरा मार्ग खोज निकाल सकती है। इसलिये कानून के साथ ही साथ, हमें समझा-बुझाकर लोगों के हृदय बदलने का तरीका भी अपनाना होगा। लोगों के दिलों में यह विश्वास जमाना होगा कि दहेज लेना-देना एक पाप है।

मेरे विचार से दहेज को मिटाने के लिए समाज से दिखावे या प्रदर्शन की प्रथा को रोकना जरूरी होगा। इस पर अभी तक कोई ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया है। विवाह में दिखावे पर इतना अधिक खर्च किया जाता है कि वह कुल दहेज की राशि से भी ज्यादा बढ़ जाता है जो गलत है। दिखावे की होड़ दहेज की राशि बढ़ा देती है। सब इस होड़ में लग जाते हैं। फलतः दहेज की प्रथा फलती फूलती है।

दहेज ने समाज पर बहुत बुरा प्रभाव डाला है। इसने लड़के और लड़की के बीच तो फर्क पैदा किया ही है, समाज में भी अशान्ति भी पैदा कर दी है। परिवार में लड़की को हीन दृष्टि से देखा जाता है। जिस स्त्री के पुत्र नहीं होता उसे परिवार वाले तिरस्कृत और प्रताड़ित करते रहते हैं। किसी जमाने में राजपूतों और ठाकुरों में लड़की का पैदा होना इतना बुरा माना जाता था, पैदा होते ही उसको मार डाला जाता था, लोग पुत्र के लिए कई-कई विवाह करते थे और जिस स्त्री के पुत्र नहीं होता था उसे त्याग देते थे। आज यह समस्या इतनी विकट तो नहीं है, फिर भी कमो-वेश रूप में मौजूद अवश्य है। पुत्र जन्म पर आज भी शानदार समारोह किये जाते हैं क्योंकि लोग यह मानते हैं कि पुत्र बड़ा होने पर घर में पत्नी के साथ ही साथ लक्ष्मी (धन) भी दहेज में लाएगा।

इसलिए समाज को दहेज के अभिशाप से मुक्त करना ही होगा। यह तभी होगा जब लेन-देन का दिखावा बन्द हो जाये। यदि लेन-देन की सौदेबाजी बन्द हो जाये तो लड़की का पिता अपनी लड़की की शादी में अगर कुछ देगा भी तो अपनी इच्छा से और अपनी सामर्थ्य के अनुसार। हर व्यक्ति यह चाहता है कि उसकी पुत्री की शादी किसी अच्छे घर में हो ताकि वह सुखी रहे और कोई कठिनाई आने पर उस परिवार से सहायता भी मिल सके। इसलिए वह अच्छे घर व वर की तलाश करता है। दहेज

उसकी इस तलाश के मार्ग में रोड़ा वन जाता है।

दहेज सही संदर्भ में देखा और समझा जाना चाहिये। अगर कोई पिता अपनी पुत्री को अपनी इच्छा से कोई उपहार देता है तो उसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये पर मांग कर दहेज लेना, सौदेवाजी करना सम्वन्ध तोड़ने की धमकी देना आदि अनुचित है। बहुत दिनों पहले दैनिक विश्वमित्र में एक लेख छपा था जिसमें दहेज़ देना व लेना, दोनों ही पाप बताये गये थे। उसी समय मैंने जाकर निवेदन किया कि लेना तो पाप है, पर देना पाप कैसे है? ऐसा नहीं होना चाहिये। पिता का भी पुत्री पर कुछ अधिकार होता है और पुत्री भी पिता की अर्थ सम्पत्ति पर कुछ हक रखती है। हाँ; वर पक्ष को लेने का आग्रह नहीं करना चाहिये।

पुराने जमाने में विवाह-सम्वन्ध लेन-देन पर नहीं, घर-परिवार के सम्मान के आधार पर होते थे। उस समय पहिरावनी के समय जब लड़की वाले देने के लिए सारा सामान रखते थे तो लड़के की ओर से वड़े बूढ़े नाक-भौं चढ़ाते थे। लड़की वाला अपनी शक्ति भर कन्या को देता, पर फिर भी कहा जाता है कि कम है। इससे अधिक पागलपन की वात और क्या हो सकती है कि लड़की के पालन-पोषण और शिक्षण पर इतना खर्चा करने वाले पिता को और भी अधिक देने के लिए मजबूर किया जाए। अगर यह दिखावा वन्द कर दिया जाये तो सारा ढांचा ही वदल जाएगा। मिलनी और टीके के अवसरों पर जो इतना खर्च किया जाता है, यह सब वन्द होना चाहिये। रिश्तेदारों को आना पड़ता है जिससे उनके समय की भी वर्बादी होती है।

दहेज प्रथा आम लोगों में ही नहीं, नेताओं में भी है। संसद सदस्यों और मंत्रियों के घरों में विवाह पर बहुत ज्यादा दिखावा किया जाता है। यदि वे इसे बन्द कर दें तो साधारण जन को भी उनसे प्रेरणा मिले। उनकी कथनी और करनी में जो अन्तर है, वह पहले दूर होना चाहिये।

पहले मृतक भोज होते थे जिन पर भारी खर्चा होता था। अब वे वन्द हो गए हैं। समय बदल गया है। दहेज की प्रथा भी हमेशा के लिए रहने वाली नहीं है। पर यह जितनी जल्दी समाप्त हो जाये उतना ही अच्छा है। हमें यही प्रयास करना है। दहेज विरोधी अभियान आम जनता के मन पर अपना असर डाल रहा है। लोग जागरण और संगठित प्रयास से ही यह काम पूरा हो सकता।

भ्रष्टाचार का उन्मूलन कैसे हो ?

एक पाश्चात्य विचारक ने 'भिरा' में एक लेख लिखा था—"भारत को नष्ट करने के लिये किसी अन्य देश को आक्रमण करने की आवश्यकता नहीं है। स्वयं भारतीय ही इस देश को नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। वे सब आपस में ही एक-दूसरे को मार डालेंगे।"

एक गम्भीर चिन्तक के लिए उपर्युक्त विचार अटपटे लग सकते हैं, लेकिन यदि हम स्वातंत्र्योत्तर भारत की गिरती हुई नैतिकता के सन्दर्भ में इनका मूल्यांकन करें तो आज से २५ वर्ष पूर्व कहे गये ये विचार हमारे देश के भयावह भविष्य की ओर इंगित करते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हम भ्रष्टाचार के काले समुद्र की गहराइयों की ओर निरन्तर बढ़ते गये और आज देश का समस्त वातावरण उसमें पूरी तरह डूब गया है। चतुर्दिक इसी भ्रष्टाचार रूपी हिरण्यकश्यपु का ही क्रूर ताण्डव परिलक्षित हो रहा है।

अब हम स्वतन्त्र हो गये हैं। हमारा लक्ष्य था देश को आजाद बनाने का। आज हम स्वतन्त्र हो गये हैं। अब हमारे लक्ष्य केवल पद, पैसा और प्रभाव-वृद्धि हो गये हैं। हमें इनकी उपलब्धि होनी चाहिये, इसके लिये हमें चाहे जो भी साधन प्रयुक्त करने पड़ें। जब तक भारतीय जन-मानस पर गांधीजी का प्रभाव था, उनका एक ही नारा था कि सभी लोग कम खर्च में अपना कार्य चलायें तथा दूसरों के सामने अपने को हीन न होने दें। गांधी-युग की समाप्ति के पश्चात सत्ता और राष्ट्र के नेतृत्व की बागडोर पं० जवाहरलाल नेहरू के हाथों में आयी और उनका एक ही नारा था कि भारतवासी अपने रहन-सहन का स्तर ऊँचा करें। यह स्तर बिना पैसे के उठ नहीं सकता था। अतः लोगों में हर रीति से पैसा बटोरने की प्रवृत्ति का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था।

अंग्रेजी शासन में देश के उद्योग-धन्धों का क्षेत्र उपेक्षित था। बिना आज्ञा के छोटा या बड़ा कारखाना स्थापित नहीं हो सकता था। स्वतन्त्र होने पर इधर आँख मुँद कर भागदौड़ शुरू हुई और बिना सोचे समझे हर किसी को लाइसेंस दिये जाने लगे। उसके परिणामस्वरूप आयात भी अनाप-शनाप हुआ और हमारी विदेशी मुद्रा की स्थिति लड़खड़ा गई। यह स्थिति सन् १९५७ से १९५९-६० तक रही।

फिर सरकार ने व्यापार तथा उद्योगों के उत्पादन पर इतने प्रतिबन्ध लगा दिये कि बिना शासकीय आज्ञा के उत्पादित माल का बिकना ही बन्द

हो गया। इसी स्थिति ने मूल्य-वृद्धि को बढ़ावा दिया। वस्त्र, अनाज, औषधि आदि नित्य जीवनोपयोगी वस्तुएं भी बिना आज्ञा के दुर्लभ हो गई। इस पर जन-मानस का क्षुब्ध होना स्वाभाविक था। उस समय (१९६२-६३ में) शायद गृहमन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा थे। उन्होंने संसद में घोषणा की कि एक वर्ष में भ्रष्टाचार समाप्त कर देंगे, अन्यथा पद-त्याग कर देंगे। संयोगवश उस समय मैं भी संसद-सदस्य था। मैंने संसद में ही श्री नन्दाजी से कहा कि यदि भ्रष्टाचार समाप्त करना है तो सभी चीजों से नियन्त्रण (कन्ट्रोल) हटा लें, यही भ्रष्टाचार की सीढ़ी है। इसके साथ ही उत्पादन को बढ़ावा देना भी जरूरी है, वह चाहे सरकारी क्षेत्र से हो या निजी क्षेत्र से। श्री नन्दाजी का उत्तर था कि कन्ट्रोल नहीं हटेगा। हमने देखा कि उनकी बात का मूल्य क्या रहा। भ्रष्टाचार कन्ट्रोल की सीढ़ियों से चढ़ कर और ऊंचाई पर जा पहुंचा।

आज इसकी जड़ें इतनी गहराई तक पहुंच गई हैं कि इस विषवृक्ष को उखाड़ना असम्भव सा लग रहा है। देशरूपी गज को भ्रष्टाचार रूपी ग्राह ने गहरे पानी में खींच लिया है। कोई युगावतार ही उसे मुक्ति दे सकता है। यह कहने या लिखने में लज्जा भी आती है तथा संकोच भी होता है कि देश की बागडोर जिनके हाथों में है उनके काले रूप सामने आते रहते हैं। देश आदर्श-विहीन हो गया है। मन्त्रियों के खर्चे दिन प्रति दिन सुरसा के मुख की भांति बढ़ रहे हैं। लाखों करोड़ों का व्यय चुनावों में, फिर अदालतों में तथा विदेश यात्राओं में होता है। यह सब आता कहाँ से है?

अभी मैंने वाराणसी के एक समाचार पत्र (साप्ताहिक) में एक सुधी लेखक के सुलझे हुये विचार पढ़े। मेरा अपना भी अनुभव है। जब भ्रष्टाचार मिटाने वाले ही भ्रष्ट हों, उनको संचालित करने वाली अफसर-शाही मशीनरी भ्रष्ट हो तो यह कैसे दूर हो सकता है? आज की स्थिति यह है कि ईमानदार वही मिलेगा, जिसको चोरी करने का मौका नहीं मिलता। जिस क्षेत्र में भी नौकरशाही की जितनी लम्बी कतारें होती हैं, वहाँ उतना ही भ्रष्टाचार है। किसी क्षेत्र में नियन्त्रण करने के लिए किसी नये विभाग की स्थापना का अर्थ भ्रष्टाचार के एक और वृक्ष का बीजारोपण है। अजीब तमाशा चल रहा है। सभी चोर-चोर का शोर भी मचा रहे हैं और अपनी जेबें भी भर रहे हैं। चोरों की भीड़ में चोर को खोज पाना क्या आसान है?

अपनी असफलता और भ्रष्टता को बचाने-छिपाने के लिए सरकार के पास एक ही उपाय है कि व्यवसायी वर्ग भ्रष्ट है। लेकिन व्यवसाय पर

कितने सरकारी विभागों का नियन्त्रण है, इसकी एक अन्तहीन सूची है। हर अधिकारी का जीवन स्तर ऊँचा ही नहीं, विलासितापूर्ण है। इसको यथावत रखने के लिए पैसा चाहिए। तब वह अधिकारी पैसा आने के कुछ अपने पेटेन्ट नुस्खे खोजता है। व्यवसायी पर गृद्ध दृष्टि रखने वाले अधिकारी से मुक्ति केवल उसी के बल पर मिलती है। कुछ विशेष क्षेत्रों में तो बिना 'जजिया' दिये व्यवसायी रह ही नहीं सकता।

एक प्रदेश के एक मुख्यमन्त्री ने तो अपने शासनकाल में काफी जमीन अपने रिश्तेदारों, मित्रों के नाम से कम पैसों में हथिया ली थी, फिर वही जमीन अच्छे दामों में बेची गई। यह तो एक उदाहरण है। अपनी आय से कई गुना अधिक सम्पत्ति के स्वामी सरकारी अधिकारी कहीं पत्नी के नाम से, कहीं भाई के नाम से तथा कहीं अन्य समीप के रिश्तेदार के नाम से संग्रहीत करते हैं तथा कानूनी अड़चनों से बचे रहते हैं। जिन मन्त्रियों के द्वारा कानून बनाये जाते हैं, वे भी भ्रष्ट हैं और क़ानून को लागू करने वाले भी भ्रष्ट हैं। सभी पैसे की ओर बेतहाशा दौड़ रहे हैं। चोर-चोर मौसेरे भाई की कहावत चरितार्थ हो रही है। सरकारी कार्यालयों में ईमानदार व्यक्ति ठुकराये जाते हैं और नौकरशाही की जेब भरने वाले बड़े-बड़े मन्त्रियों के साथ बैठ कर ससम्मान चाय पीते हैं।

फिर भी हमें निराश नहीं होना चाहिये। हमें वे आलोक स्थल खोजने चाहिए जिनसे यह अन्धियारा मिट सके। शासकों को पूर्ण निष्ठा के साथ इस बिगड़ैल नौकरशाही की लगाम कसनी चाहिए। मन्त्रियों को यह नहीं सोचना चाहिए कि नौकरशाही के बिना उनकी कुर्सी सुरक्षित नहीं है। उन्हें इस घोड़ी को अपने इशारों पर चलाना चाहिए, अन्यथा यह घोड़ी उन्हें अपनी पीठ पर चढ़ा उधर ही ले जायेगी, जिधर उसके चरने के लिए हरा मैदान है। हरे मैदान की ओर भागने वाली घोड़ी पर सवार होनेवाली पिछली सरकार की द्रुतगति हमने देखी, क्या वर्तमान शासक सबसे शिक्षा ग्रहण नहीं करेंगे ? चाहे जो भी सरकार आये, चाहे जितने कल-कारखाने, सड़कें, पुल आदि बनाये जायें लेकिन जबतक निष्ठावान व्यक्ति का निर्माण नहीं होगा और इस नौकरशाही की घोड़ी पर सरकार दृढ़ता से सवारी नहीं कसेगी, तब तक कुछ परिणाम नहीं निकलेगा। हम सड़कें, कारखाने, पुल सभी खा जाएंगे। सभी सर्जनाएं भ्रष्टाचार के उदर में समाकर स्वाहा हो जाएंगी। देश का प्रहलाद ठुकराया जाता रहेगा और हिरण्यकश्यपु (स्वर्णप्रिय) अपनी तलवार घुमाता रहेगा देखना है कि अभिनव नृसिंह का युगावतार कब होगा।

जीवन साहित्य मई १९७९

राज्याधिकारी का प्रजा के प्रति कर्तव्य

यह सनातम नियम है कि जिसने धरती की संतानों को सुख पूर्वक रखा, उनके अमित मंगल के लिये साधना की, वही इस धरती का अधिपति हुआ है। वह मात्र एक निश्चित भूखण्ड का भूपति ही नहीं हुआ, बल्कि उसका साम्राज्य कोटि-कोटि प्रजाओं के हृदयों पर भी स्थापित हुआ। राज्य चाहे राजा का हो या किसी दल का, जो जनता के अन्तरतम में अपने लोक-कल्याणकारी कार्यों द्वारा अपना राज्य बना सका, सच्चा जननेता कहलाने का अधिकार वही पा सका। इस सम्बन्ध में भगवान राम का आदर्श सर्वोपरि कहा जा सकता है। चौदह वर्षों तक वन में रहने एवं रावण आदि राक्षसों का बध करके वे सुग्रीव एवं विभीषण के साथ अयोध्या आये। चौदह वर्ण पूर्ण पैदल ही वन को जाने वाले राम की सत्ता सम्पूर्ण कौशल देश पर स्थापित हो गई।

फिर उनके द्वारा सीता का परित्याग हुआ। सतीत्व की अग्नि परीक्षा देकर भी एक प्रजाजन के द्वारा उन पर आरोप लगाया गया। प्रजा के एकाएक जन की भावनाओं का आदर करने वाले राम ने जब इसे सुना तो उन्हें बहुत आघात लगा और उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि सीता को अरण्य वन में छोड़ आओ। गर्भवती सीता को तमसा नदी के तीर पर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के समीप छोड़ दिया गया।

रात्रि का प्रथम प्रहर शेष हो रहा था। मर्यादा पुरुषोत्तम राम राजकाज से मुक्त होकर अपने शयन कक्ष में आ गये थे। सीता के परित्याग के बाद उनका यह नियम हो गया था कि शयन कक्ष में आकर वे अपनी राजसी पोशाक उतार देते थे और वल्कल धारण कर शयन कक्ष से लगे कक्ष में जाकर मुक्त मन से रोते थे। यह उनका रुदन कक्ष बन गया था। आज उन्होंने जैसे ही अपने वस्त्र उतारे कि सामने सुमंत आते दिखाई पड़े। राम ने उनके आने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि महाराज आपके पास आये बहुत दिन हो गये थे, इसलिये चला आया।

राम ने कहा—यह मेरे सोने का समय है। क्या कोई आवश्यक कार्य है ?

सुमंत ने कहा—मैं तब तक बैठा रहूंगा जब तक आप सो नहीं जायेंगे। जब राम ने कहा कि यदि कोई राजकार्य हो तो मैं पोशाक पहन लूं। अयोध्यपति के लिये ऐसे शोभा नहीं देता है। इस पर सुमंत ने कहा कि आप तो मेरी एवं अयोध्यावासियों की दृष्टि में वही राम हैं जब आप कपड़े भी पहनना नहीं जानते थे। आप तो इस गोद में भी खेले एवं लेटे हैं। राम का अन्तर पिघल गया, अश्रु भरे नेत्रों से बोले कि वह राम तो कब का मर गया

है। यह नया राम जन्मा है। कोई कार्य हो तो कहिये।

सुमंत ने उत्तर दिया—कि जब आप सो जायें, मैं यहीं बैठा रहूँ यही काम हैं। राम ने सुमंत को टालने की कोशिश की, पर वे हटे नहीं।

तब राम ने गद्गद् कण्ठ से कहा—सुमंत! यह अपने तथा अयोध्यावासियों ने क्या सोचा है? सीता के त्यागने के कारण महासती देवी अरुधन्ती अयोध्या में पैर नहीं रखना चाहती। क्या आपको यह पसन्द नहीं है कि आपका यह राम दुनिया के एक कोने में बैठ कर रोये और अपना मन हल्का कर सके? सुमंत का गला भर आया, वे बोले—महाराज आप अवश्य जी भर रोयें और मन को हल्का कर।

सुमंत की गोद में सिर रख कर राम ने कहा—आप मेरे पिता के समान हैं। माता कौशल्या भी सीता के त्याग के बाद क्षुब्ध होकर गुरू वशिष्ठ के आश्रम में चली गई। राम के लिये अब केवल ऊपर आकाश तथा नीचे धरती शष है। उसे जी भर रोने दो। सुमंत ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा कि जी भर रोईये। इस पर राम ने कहा इस कक्ष में नहीं रो सकता। तो क्या आंसू भी स्थान खोजते हैं? सुमंत बोले। राम ने कहा नहीं, पर मेरा मन खोजता है—तो क्या कपड़े भी खोजता है। उन्होंने पूछा। राम ने कठोरता से कहा—हाँ।

राम को गहरी दृष्टि से देखकर सुमंत ने कहा—इतना भीषण अन्तर्द्वन्द्व! तब आप सीता को ले क्यों नहीं आते? राम का मर्म भिद गया। वे बोले—सीता तो गई क्या मेरी प्रजा यह स्वीकार करेगी?

सुमंत ने उत्तर दिया—ऐसी भी कोई प्रजा है? दो चार लोगों के कहने से आपने ऐसा कर दिया। आप अवश्य ही मन से कड़े हैं अतः मैं मौन रहता हूं। राम ने अश्रु पोंछते हुए कहा—प्रजा कैसी भी हो प्रजा है रघ राजा की इसी प्रजा के कारण हम उज्ज्वल हैं।

सुमंत ने जब पूछा कि क्या मूर्ख प्रजा की भी बात माननी चाहिए तो राम ने उत्तर दिया—प्रजा को मूर्ख मानने वाला राजा स्वयं मूर्ख होता है। यदि आप राजा हैं तो उसकी मूर्खता भी स्वीकार करनी होगी। यदि आप सच्चे राजा हैं तो प्रजा को उसकी मूर्खता से परिचित कराइये, उस पर मनमानी मत करिये। किसी मानवीय व्यवस्था या तंत्र का मुखिया बनने के लिये अपना मन सर्वसाधारण के मनो से जोड़ना पड़ता है। प्रजा का हृदय उसकी आकांक्षा सुख-दुख ममता, रुचि-अरुचि आदि अपना हृदय आकांक्षा, सुख-दुख आदि बनाना पड़ता है। जो ऐसा नहीं कर सकता उसे समस्त मान-सम्मान मुकुट एवं सिंहासन छोड़कर किसी कोने में शाँति से जीवन बिताना चाहिये। यह है मेरा

धर्म। यदि आप समझते हैं कि मैंने जानकी जी का त्याग ये सब बातें सोचे समझे बिना कर दिया तो आपको अपनी धारणा बदल देनी चाहिये।

सुमंत ने कहा—तब तो राजा बनना बहुत कठिन है और यदि आपने विचार करके सीता देवी का त्याग किया है तो रात में अँधेरे में नित्य आंसू क्यों बहाते हैं ? राम ने कहा—तब क्या करूं ? सच मानिये, आजकल मैं दोहरा जीवन जी रहा हूँ। प्रातः राज-सभा पहुंचने से लेकर इस कक्ष में आने तक मैं राजा रहता हूँ। छत्र एवं राजसी पोषाक धारण करते ही राजा बन जाता हूं और समस्त दिन अपनी अस्मिता को अत्यन्त सावधानी से सँभाले रहता हूं। यहाँ आने पर रात्रि में मेरे अन्दर का सीतापति जाग पड़ता है। वत्कल धारण कर मैं रूदन कक्ष में जी भर रोता हूं और सीता को याद कर हृदय को हल्का कर लेता हूं। सुमंत ! हर राजा को इसी भाँति दोहरा जीवन जीना पड़ता है। यही राजकीय जीवन की अनिवार्य विवशता है।

सुमंत ने कहा—राजा आप हैं इसमें सीता देवी का क्या अपराध है। क्या मूर्ख प्रजा के कारण उन्हें दुःख भोगना चाहिये ?

राम ने उत्तर दिया—सीता का अपराध यही है कि उसने मुझसे विवाह किया। राजा की रानी के भाग्य में यही अटल सत्य लिखा होता है। राजा को राज या राज-धर्म दो में एक को चुनना पड़ता है। सुमँत ने जब पूछा कक्ष क्या ऐसा नहीं हो सकता कि दोनों को चुनना न पड़े तो राम ने कहा—यह सुयोग विरलों को ही मिलता है। मुझे राजसिंहासन के बाद प्रजा भी उत्तराधिकार में मिली है। अगर वह मूर्ख हैं तो दायित्व राजा का है। राजा ने उसे सँस्कारवान क्यों नहीं बनाया। प्रजा में यदि उच्च संस्कार जगाने वाले मनीषी होते तो क्या सीता को त्यागना पड़ता ? यदि प्रजा के संस्कार जाग्रत किये गये होते और सीता को मैंने त्यागा होता तो प्रजा के दबाव से मुझे सीता को लिवा लाने के लिये जाना पड़ता।

जब सुमंत ने कहा कि वशिष्ठ आदि तो हैं तो राम ने कहा कि इसी-लिये तो देवी अरून्धती ने अयोध्या न आने की प्रतिज्ञा की है। उस देवी का कोप इस समस्त पुरूष वर्ग के प्रति है।

तो क्या आप नित्य सीता का स्मरण कर रोते रहेंगे और सीताजी के भाग्य में यही लिखा है ? सुमंत ने पूछा। राम ने कहा—जीवन भर रोऊंगा और सीता के भाग्य में चौबीसों घण्टे रोना ही लिखा है।

सुमँत ने पूछा कि ऐसे कब तक चलेगा ? इस शरीर की भी तो कोई मर्यादा है ? यदि प्रजा की उपेक्षा असह्य है तो राज्य का त्याग क्यों नहीं

कर देते, यह शक्ति तो आप में है। राम ने उत्तर दिया—जब तक देव की इच्छा होगी, चलेगा। मेरे पूर्वजों द्वारा प्रजा की उपेक्षा करने के कारण ही तो मुझे यह प्रायश्चित करना पड़ रहा है। मैं चाहता तो सीता को भी रख लेता और शासन भी चलाता, पर यह प्रजा-द्रोह मुझे स्वीकार नहीं हुआ। रहो राज्य-त्याग की बात। वनवास में भी मैं पादुका देकर इसे स्वीकार कर चुका था। अब यदि सीता को कलंक लगाने के कारण प्रजा का त्याग करता तो यह प्रजा के साथ विश्वासघात होता। मैं नहीं चाहता कि प्रजा सीता का बोझ इच्छा या अनिच्छा से स्वीकार करे। ऐसी स्थिति में राज्य त्याग की अपेक्षा सीता त्याग ही आसान था।

सुमंत ने कहा—आपके एवं सीता के दुखी रहने से प्रजा की कितनी हानि हो रही है। राम बोले—जब तक प्रजा को स्वयं यह प्रतीत नहीं तब तक यही एक मार्ग है। ऐसे दुःखों को सिर पर ओढ़ लेने से भी तो प्रजा के समझाने का मार्ग बनता है।

सुमंत ने कहा कि क्या कोई सरल मार्ग नहीं है कि प्रजा को प्रतीत हो मेरा यही आग्रह है कि आप रोयें नहीं और सीता को वापस ले आवें।

राम ने कहा—मार्ग है पर परिणाम बहुत दूर आने पर मिलता है। मेरे और सीता के भाग्य में नित्य रोना लिखा है। यह अमिट है।

तो क्या मेरा आना व्यर्थ हुआ ? सुमंत ने प्रश्न किया। नहीं—आपको समाधान और मुझे संतोष मिला। राम ने कहा। जब सुमंत ने यह पूछा कि क्या सीता एवं प्रजा यह सब जानती है तो राम ने कहा—सीता का हृदय मुझे पहचानता है हमारा परस्पर स्नेह ऐसा है जहां कोई भ्रांति नहीं और सीता तो राम की ही मानी जाएगी।

सुमंत ने हाथ जोड़ कर कहा—स्थिति स्पष्ट हो गई और ऐसी ही बनी रहेगी। हाँ इस विषय पर बात करने में मैं लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सभी डरते थे। पर आपसे खुल कर लम्बी बातें हुई। राम ने कहा—मैं स्वभाव से ही दृढ़ प्रतिज्ञ हूं। निर्णय केवल एक बार ही करता हूं पर हर निर्णय सोच समझ कर करता हूं। पर एक प्रश्न और है वह यह कि बिना सीता के आपके निर्णय असंतुलित होते हैं। लक्ष्मण ने भी कहा है कि जब रावण सीता को हर ले गया तो आप एक वर्ष तक असंतुलित रहे। आज भी सीता से रहित होने पर आपके निर्णय ऐसे लग रहे हैं।

राम ने कहा—सीता के बिना मैं अधूरा हूं, पँगु हूं और हूं निष्प्राण। यह मुझे स्वीकार है। यदि अयोध्या को ऐसे ही राजा की आवश्यकता है तो मै क्या करूं। अब इस जीवन में मैं शायद ही संतुलित बन सकूं।

मेरा मन मस्तिष्क तो असंतुलित है ही, शरीर भी पक्षाघात के रोगी की भाँति हो गया है। पागलों की भाँति विरोधी आदेश देता हूं। अयोध्या को ऐसे ही पागल राम की आवश्यकता है। जब उसे सयाने राम की आवश्यकता होगी वह बना लेगी। सब कुछ प्रजा के ही हाथों में है। इतना कह कर सिसक उठे। सुमंत ने कहा अब महाराज शांत हो जाइये राम ने कहा अब जाइये और इस राम को जी भर रोने दो जिससे कि मन हलका हो सके। आपका राम इतनी दया का अधिकारी तो है ही।

सिविक सर्विस न्यूज़ बुलैटिन ११-६-७९

स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा

रूढ़ियों, आडम्बरों और बाह्याचारों से ऊपर उठ कर स्वामी जी ने धर्म की विलक्षण व्याख्या प्रस्तुत की। धर्म मनुष्य के भीतर निहित देवदूत का विकास है। धर्म न तो पुस्तकों में है, न धार्मिक सिद्धान्तों में। वह केवल अनुभूति में निवास करता है। धर्म अन्ध विश्वास नहीं है, धर्म अलौकिता में नहीं है, वह जीवन का अत्यन्त स्वाभाविक तत्व है। मनुष्य में पूर्णता की इच्छा है, अनन्त जीवन की कामना है ज्ञान और आनन्द प्राप्त करने की चाह है। पूर्णता, ज्ञान और निम्न स्तर पर नहीं है उनकी खोज जीवन के उच्च स्तर पर की जानी चाहिये। यूरोप और अमेरिका के निवासियों पर स्वामी जी ने यह प्रभाव डालना चाहा कि व्यक्ति अथवा समूह के जीवन की सफलता उनकी आधिभौतिक समृद्धि अथवा बौद्धिक उपलब्धियों पर निर्भर नहीं करके आध्यात्मिक उन्नति पर निर्भर करती है। निःस्वार्थता और प्रेम का विकास करे तथा बाद को अन्य गुणों का। धर्म एशिया वालों के पास अब भी बहुत है। वे दूसरों से धर्म का पाठ नहीं पढ़ना चाहते। जो जाति भुख से तड़प रही है, उसके आगे धर्म परोसना, उसका अपमान है। जो जाति रोटी को तरस रही है उसके हाथ में दर्शन और धर्म ग्रन्थ रखना उसका मजाक उड़ाना है।

कहते हैं एक बार कोई नवयुवक स्वामीजी के पास गया और उनसे बोला- स्वामी जी मुझे गीता समझाइये। स्वामीजी ने सच्चे मन से कहा गीता समझने

का वास्तविक स्थान फुटबाल का मैदान है। जाओ, घंटे भर खेल कूद लो। गीता तुम स्वयं समझ जावोगे।

स्वामी विवेकानन्द संसार में घूम कर देख चुके थे कि नई मानवता कितनो उच्छल और वलवती है, उसकी तुलना में भारत के लोग उन्हें बौने और बीमार दिखाई दिये। अतएव भारत में उनके अधिकांश उपदेश शारीरिक उन्नति, साहस, सेवा और कर्म की महत्ता सिद्ध करने को दिए गए।

स्वामी जी बराबर कहा करते थे कि भारत का कल्याण शक्ति की साधना में है। जन-जन में जो शक्ति छिपी हुई है, हमें उसे साकार करना है। जन-जन में जो साहस और जो विवेक प्रच्छन्न है, हमें उसे बाहर लाना है। मैं भारत में लोहे की मांस पेशियों और फौलाद की नाड़ी तथा धमनी देखना चाहता हूं क्योंकि इन्हीं के भीतर वह मन निवास करता है जो शंपाओं एवं वज्रों से निर्मित होता है। शक्ति, पौरुष क्षात्र, वीर्य और ब्रह्म तेज इनके समन्वय से भारत की नई मानवता का निर्माण होना चाहिये। मृत्यु का ध्यान करो, प्रलय को अपनी समाधि में देखो तथा महा भैरव रुद्र को अपनी पूजा से प्रसन्न करो। जो भयानक है, उसकी अर्चना से ही भय वस में आयेगा। संभव हो तो जीवन को छोड़ कर मृत्यु की कामना करो। तलवार की धार पर अपना शरीर लगा दो और रुद्र शिव से एकाकार हो जाओ।

स्वामीजी की अहिंसा और वैराग्य भावना में भी क्षात्र धर्म का स्पर्श था। जिन विचारों जिन धर्मों और आचारों से कायरता की वृद्धि एवं पौरुष का दलन होता है स्वामी जी ने उनके अत्यन्त विरुद्ध थे। इसीलिये, बुद्ध की अहिंसा की स्वामी जी ने कभी भी खुल कर प्रशंसा नहीं की। बल्कि एक बार तो उन्होंने कह भी दिया कि बुद्ध की शिक्षाओं के पीछे, भयानक दुर्बलता की छाया विद्यमान हैं। स्वामी जी न तो धर्मयुद्ध के प्रेमी थे न उनकी यही सम्मत्ति थी कि क्रोध के प्रत्येक उफान पर मनुष्य को तलवार लेकर दौड़ना ही चाहिये। किन्तु हिंसा को कदाचित वे सभी स्थितियों में त्याज्य नहीं मानते थे। एक बार उनसे किसी भक्त ने पूछा कि महाराज कोई शक्ति-शाली व्यक्ति यदि किसी दुर्बल का गला टीप रहा हो, तो हम क्या करना चाहिये ? स्वामी जी ने तड़ाक से उत्तर दिया-क्यों ? बदले में उस शक्तिशाली की गर्दन टीप दो। क्षमा भी कमजोर होने पर अक्षम्य हैं, असत्य और अधर्म है। युद्ध उससे उत्तम धर्म है क्षमा तभी करनी चाहिये जबकि तुम्हारी भुजा में विजय शक्ति वर्तमान हो।

स्वामी जी स्वयं सन्यासी थे। सन्यासियों का एक बृहत मठ भी उन्होंने ही खड़ा किया एवं समाजसेवी युवकों को वे अविवाहित रहने का उपदेश देते

थे। किन्तु गृहस्थों को वे हीन नहीं मानते थे। उलटे, उनका विचार था कि गृहस्थ भी ऊँचा और सन्यासी भी नीचा हो सकता है। मैं सन्यासी और गृहस्थ में कोई भेद नहीं करता। सन्यास हो या गृहस्थ जिसमें भी मुझे महत्ता, हृदय की शीतलता और चरित्र की पवित्रता के दर्शन होते हैं, मेरा मस्तक उसी के सामने झुक जाता है।

नारियों के प्रति उनमें असीम उदारता का भाव था। वे कहते थे ईसा अपर्ण थे क्योंकि जिन बातों में उनका विश्वास था उन्हें वे अपने जीवन में नहीं उत्तार सके। उनकी अपूर्णता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उन्होंने नारियों को नरों के समकक्ष नहीं माना। असल में उन्हें यहूदी संस्कार जकड़े हुए थे। इसीलिये वे किसी नारी को अपनी शिष्या नहीं बना सके। इस मामले में बुद्ध उनसे श्रेष्ठ थे क्योंकि उन्होंने नारियों को भी भिक्षुणी होने का अधिकार दिया। एक बार उनके एक शिष्य ने पूछा—महाराज, बौद्ध मठों में भिक्षुणियाँ बहुत रही थी इसीलिये तो देश में अनाचार फैल गया। स्वामी जी ने इस आलोचना का उत्तर नहीं दिया किन्तु वे बोले-पता नहीं, इस देश में नारियों और नरों में इतना भेद क्यों किया जाता है। वेदान्त तो यही सिखाता है कि सबमें एक ही आत्मा का वास है। तुमलोग नारियों की सदैव निन्दा ही किया करते हो, किन्तु कह सकते हो कि उनकी उन्नति के लिये अब तक तुमने क्या किया है ?

धर्म—साधना के लोभ में जीवन से भागकर गुफा में नाक कान दबा कर प्राणायाम करने की परम्परा की भारत में बड़ी महिमा थी। स्वामी विवेकान्द ने इस परम्परा की महिमा एक झटके में उड़ा दी। आधा मील की खाई तो हमसे पार नहीं की जाती मगर हनुमान के समान हम समग्र सिन्धु को लांध जाना चाहते हैं। यह होने वाली बात नहीं है।

हिन्दुत्व का प्रबल समर्थक होने पर भी स्वामी विवेकानन्द में इस्लाम के प्रति कोई द्वेष नहीं था। उनके गुरु परमहंस रामकृष्ण ने तो छः महीनों तक विधिवत मुसलमान होकर इस्लाम की साधना भी की थी। इस संस्कार के कारण इस्लाम के प्रति उनका दृष्टिकोण यथेष्ट रूप से उदार था। उन्होंने कहा है कि यह तो कर्म का फल था कि भारत को दूसरी जातियों ने गुलाम बनाया। किन्तु भारत ने भी अपने विजेताओं में से प्रत्येक पर सांस्कृतिक विजय प्राप्त की। मुसलमान इस प्रक्रिया के अपवाद नहीं है। शिक्षित मुसलमान, प्रायः सूफी होते हैं जिनके विश्वास हिन्दुओं के विश्वास से भिन्न नहीं होते। इस्लामी संस्कृति के भीतर ही हिन्दू विचार प्रविष्ट हो गये हैं। विख्यात मुगल सम्राट अकबर हिन्दुत्व के काफी समीप थे। यही नहीं प्रत्युत

काल-क्रम में इंगलैण्ड पर भी भारत का प्रभाव पड़ेगा।

सिस्टर निवेदिता की पुस्तक (माइ मास्टर) में इस बात का उल्लेख है कि एक बार स्वामी जी तीन चार दिनों की एकान्त समाधि से लौटकर निवेदिता से बोले—मेरे मन में यह सोचकर बराबर क्षोभ उठता था कि मुसलमानों ने हिन्दुओं के मन्दिरों को क्यों तोड़ा उनके देवी देवताओं की मूर्तियों को क्यों भ्रष्ट किया। किन्तु आज माता ने (काली ने) मेरे मन को आश्वस्त कर दिया। उन्होंने मुझसे कहा अपनी मूर्तियों को मैं कायम रखूं या तुड़वा दूं यह मेरी इच्छा है। इन बातों पर सोच-सोच कर तू क्यों दुखी होता है?

इस्लाम और हिन्दुत्व के मिलन का महत्व स्वामीजी ने एक और उच्चस्तर पर बतलाया है। सामान्यत: वेदान्त ज्ञान का विषय समझा जाता है, जिसमें त्याग और वैराग्य की बातें अनिवार्य रूप से आ जाती है। किन्तु इस्लाम मुख्यत: भक्ति का मार्ग है तथा हजरत मुहम्मद का पंथ देह-दंडन, संन्यास और वैराग्य को महत्व नहीं देता। किन्तु स्वामी विवेकानन्द की व्याख्या का वेदान्त निवृत्ति से मुक्त शुद्ध प्रवृत्ति का मार्ग था एवं तात्विक दृष्टि से इस्लाम के प्रवृत्ति मार्ग से उसका कोई विरोध नहीं रह गया था। इसलिए स्वामीजी की कल्पना थी कि इस्लाम की व्यावहारिकता को आत्मघात किये बिना वेदान्त के सिद्धान्त जनता के लिए उपयोगी नहीं हो सकते। सन् १८९८ ई० में उन्होंने एक चिट्ठी में यह भी लिखा था कि हमारी जन्मभूमि का कल्याण तो इसमें है कि उसके दो धर्म, हिन्दुत्व और इस्लाम मिलकर एक हो जाये। वेदान्ती मस्तिष्क और इस्लामी शरीर के संयोग से जो धर्म खड़ा होगा वही भारत की आशा है। भारत में विश्व धर्म, विश्व बन्धुत्व और विश्ववाद की भावना का आरम्भ राममोहन राय की अनुभूतियों में हुआ था एवं उन्होंने हिन्दू धर्म की जो व्याख्या प्रस्तुत की, वह विश्व-धर्म की भूमिका से तनिक भी कम नहीं थी।

धर्म को स्वामीजी व्यक्ति और समाज दोनों के लिए उपयोगी मानते थे। धर्म के विरुद्ध संसार में जो भयानक प्रतिक्रिया उठी है, उसका निदान वह यह देते थे कि दोष धर्म का नहीं, धर्म के गलत प्रयोग का है। ठीक वैसे ही जैसे विज्ञान से उठने वाली भीषणताओं का दायित्व विज्ञान पर न होकर उन लोगों पर है जो विज्ञान का गलत उपयोग करते हैं। स्वामीजी का विचार था धर्म को समाज पर जिस ढंग से लागू किया जाना चाहिए था, उस ढंग से वह लागू नहीं किया गया है। हिन्दू अपनी सारी धार्मिक योजनाओं को कार्य के रूप में परिणित करने में असफल भले ही रहा हो, किन्तु यदि

कभी भी कोई विश्व धर्म जैसा धर्म उत्पन्न होने वाला है तो हिन्दुत्व के ही समान होगा जो देश और काल में कहीं भी सीमित या आवद्ध नहीं होगा, जो परमात्मा के समान ही अनन्त और निर्वाध होगा तथा जिसके सूर्य का प्रकाश कृष्ण और ईसा के अनुयायियों पर, संतों और अपराधियों पर एक समान चमकेगा। यह धर्म न तो ब्राह्मण होगा, न बौद्ध न ईसाई होगा न मुसलमानी, प्रत्युत वह इन सब के योग और सामंजस्य से उत्पन्न होगा।

सिविल सर्विस न्यूज बुलेटिन २९-७-७९

सत्य और ईमान्दारी का सर्वदा महत्व

हर एक युग में सत्य की तथा ईमानदारी का महत्व रहा है। यह कोई भी काल में नीचे स्तर पर नहीं आये। न वर्तमान में भविष्यइन दोनों बातोंका महत्व कम हो सकता है। सतयुग में विशेष मात्रा में इसका प्रभाव रहा। त्रेतायुग में शायद उस मात्रा से कुछ कम रहा ऐसा उगता है। द्वापर युग में और भी कुछ महत्व दिखाई देता है। इस कलयुग में सत्य तथा ईमानदारी का महत्व पहले के तीन युगों में से और भी कम दिखाई देता है। लेकिन इसका लोप नहीं हो सकता। आज भी झूठ बोलने वाले यह कह कर ही झूठ बोलते हैं कि मैं सत्य ही बोल रहा हूं। वैसे ही ईमानदारी के विषय में भी यही बात है। जहाँ भी आप देखेंगे, बोलचाल में, लेन देन में या व्यापार करने में सारी जगह पहले यही सोचा जाता है यह काम हम करते हैं सच्ची ईमानदारी के साथ भले ही पीछे धोखा खा जाये। संत महात्माओं का भी यह सवाल है जब विश्वास हो जाता है तो वह जो चाहे करवा लेगा। विश्वास होना ही ईमानदारी से तथा सत्य के व्यवहार से सारी दुनिया में इन दो बातों के व्यवहार पर निर्भर करता है। चाहे जहाँ आप जायें बस केवल यह विश्वास होना चाहिये कि यह ईमानदारी से काम करता है या करेगा उसकी बहुत साख भी जम जाती है। जैसी बाहर के देशों में ब्रिटेन जर्मनी, फ्रांस, इटली, स्वीटजर लैंड, डेनमार्क, नार्वे, स्वेडन,

अमेरिका इन नामों के अलावा वहुत देश है जिसका नाम अगर लिखा जाय तो एक पुस्तक वन जा सकती है।

लेकिन भारतवर्ष में तो हमेशा सत्य को ही विशेष स्थान है। आज के इस नवीन युग में राजनैतिक लोग इसे वहुत वड़ा स्थान नहीं देते। पहले की राजनीति भी सत्य के साथ वन्धी हुई थी। असुरों ने देवताओं को युद्ध में हरा दिया तो देवता लोग बहुत चिन्तित हो गये और खोज करने लगे। अव क्या उपाय करना चाहिये। पीछे उन्हें मालूम हुआ असुरों के गुरू शुक्राचार्य के पास संजीवन विद्या है जितने असुर मर जाते हैं उन्हें वह अपनी विद्या के जोर से जिला देते हैं। तव उन्होंने एक रास्ता निकाला कि देवताओं के गुरू वृहस्पति को कह कर उनके पुत्र को शुक्राचार्य के पास भेजा जाय। यह विद्या सीखने के लियें। वहुत प्रेम से गया। शुक्राचार्य को सारी बातें बताई उन्होंने उसे शिष्य के रूप में स्वीकार किया। पूरी कथा इस प्रकार है :—

उन दिनों त्रिलोक पर अधिकार करने के लिये देवता और असुर आपस में लड़-भिड़ रहे थे। देवताओं ने अपनी विजय के लिये आँगिरस वृहस्पति को और असुरों ने भार्गव शुक्र को अपना पुरोहित बनाया। ये दोनों ब्राह्मण भी आपस में वड़ी होड़ रखते थे। जब युद्ध में देवताओं ने असुरो को मार डाला, तव शुक्राचार्य ने उन्हें अपनी विद्या के बल से जीवित कर दिया। परन्तु असुरों ने जिन देवताओंको मारा था, उन्हें वृहस्पति जीवित न कर सके। शुक्राचार्य संजीवन विद्या जानते थे, परन्तु बृहस्पति नहीं। इससे देवताओं को बड़ा दुःख हुआ। वे घवड़ा कर वृहस्पति के बड़े पुत्र कच के पास गये और उनसे प्रार्थना की भगवान! हम आपकी शरण में हैं। आप हमारी सहायता कीजिये अमित तेजस्वी विप्रवर शुक्राचार्य के पास जो संजीवनी विद्या है, उसे आप शीघ्र ही प्राप्त कर लीजिये, हम लोग आपको यज्ञ में भागी दार बना लेंगे। शुक्राचार्य आजकल वृषपर्वा के पास रहते हैं। देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर कच शुक्राचार्यके पास गया और उनसे निवेदन किया; मैं महर्षि अंगिरा का पौत्र और देवगुरु वृहस्पति का पुत्र हूं। मेरा नाम कच है आप मुझे शिष्य रूप में स्वीकार कीजिये, मैं एक हजार वर्ष तक आपके पास रह कर ब्रह्मचर्य पालन करूंगा। स्वीकृति दीजिये। शुक्राचार्य ने कहा, बेटा स्वागत है। मैं तुम्हारी बात स्वीकार करता हूं। तुम मेरे पूजनीय हो। मैं तुम्हारा सत्कार करूंगा और मैं समझता हूं कि यह वृहस्पति का ही सत्कार है।

कच ने शुक्राचार्य की आज्ञानुसार ब्रह्मचर्य वृत ग्रहण किया। वह अपने गुरुदेव को तो प्रसन्न रखता ही, गुरुपुत्री देवयानी को भी सन्तुष्ट

रखता। पाँच सौ वर्ष बीत जाने पर दानवों को यह बात मालूम हुई कि कच का क्या अभिप्राय है। उन्होंने चिढ़ कर गो चराते समय बृहस्पतिजी से द्वेष होने के कारण और संजीवनी विद्या की रक्षा के लिये कच को मार डाला और उसके टुकड़े-टुकड़े करके भेड़ियों को खिला दिया। गौएँ बिना रक्षक ही अपने स्थान पर लौट आयी। देवयानी ने देखा कि गौएँ तो आ गयी, पर कच नहीं आया। तब उसने अपने पिता से कहा—पिताजी आपने अग्नि होत्र कर लिया, सूर्यास्त हो गया, गौएँ बिना रक्षक के ही लौट आयी किन्तु कच कहाँ रह गया ? निश्चय ही उसे किसी ने मार डाला या वह स्वयं मर गया। पिताजी मैं आपसे सौगन्ध खाकर सच-सच कहती हूं कि मैं बिना कच के नहीं जी सकती। शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या का प्रयोग करके कच को पुकारा आओ बेटा। कच का एक-एक अंग भेड़ियोंका शरीर छेद-छेद कर निकल आया और वह जीवित होकर शुक्राचार्य की सेवा में उपस्थित हुआ। देवयानी के पूँछने पर उसने सारा वृतान्त कह सुनाया। इसी प्रकार असुरों के मारने पर दूसरी बार भी शुक्राचार्य ने कच को जिला दिया।

तीसरी बार असुरों ने नयी युक्ति की। उन्होंने कच को काट कर आग से जलाया और उसके शरीर की राख बारुणी में मिला कर शुक्राचार्य को पिला दी। देवयानी ने पिता से पूछा, पिताजी फूल लेने के लिये कच गया था, लौटा नहीं। कहीं वह फिर तो नहीं मर गया ? मैं उसके बिना जी नहीं सकती। मैं यह बात सौगन्ध खाकर कहती हूं। शुक्राचार्य ने कहा बेटी मैं क्या करूँ ? असुर उसे बार-बार मार डालते हैं। देवयानी के हठ करने पर उन्होंने फिर संजीवनी विद्या का प्रयोग किया और कच को बुलाया कच ने भयभीत होकर उनके पेट के भीतर से ही धीरे-धीरे अपनी स्थिति बतलायी। शुक्राचार्य ने कहा, बेटा तुम सिद्ध हो। देवयानी तुम्हारा सेवा से बहुत प्रसन्न है। यदि तुम इन्द्र नहीं हो तो लो, मैं तुम्हें संजीवनी विद्या बतलाता हूं। तुम इन्द्र नहीं ब्राह्मण हो तभी तो मेरे पेट में अब तक जी रहे हो। लो यह विद्या मेरा पेट फाड़ कर निकल आओ। तुम मेरे पेट में रह चुके हो इसलिये सुयोग्य पुत्र के समान मुझे फिर जीवित कर देना। कच ने वैसा ही किया और प्रणाम करके कहा—जिसने मेरे कानों में सजीवनी विद्या रूप अमृत की धारा डाली है, वही मेरा माता पिता है। मैं आपका कृतज्ञ हूं। मैं आपके साथ कभी कृतघ्नता नहीं कर सकता। जो वेदरूप उत्तम ज्ञान के दाता गुरू का आदर नहीं करता, वह कलंकित होकर नरक-गामी होता है।

शुक्राचार्य को यह जानकर बड़ा क्रोध हुआ कि धोखे में शराब पीने

के कारण मेरे विवेक का नाश हो गया और मैं ब्राह्मण कुमार को ही पी गया। उन्होंने उस समय यह घोषणा की कि आजसे यदि जगत का कोई ब्राह्मण शराब पीयेगा तो वह धर्म भ्रष्ट हो जायगा और उसे ब्रह्म हत्या लगेगी। इस लोक में तो यह कलंकित होगा ही, उसका परलोक भी बिगड़ जायगा। ब्राह्मणों, देवताओं और मनु की सन्तानों सावधानी के साथ सुनो आज से मैंने ब्राह्मणों के लिये यह धर्म मर्यादा सुनिश्चित कर दी है। कच संजीवनी विद्या प्राप्त करके सहस्र वर्ष पूरे होने तक उन्हीं के पास रहा। समय पूरा होने पर शुक्राचार्य ने उसे स्वर्ग जाने की आज्ञा दे दी।

जब कच वहाँ से चलने लगा तब देवयानी ने कहा—ऋषि कुमार तुम सदाचार, कुलीनता, विद्या तपस्या और जितेन्द्रियता के उज्ज्वल आदर्श हो। मैं तुम्हारे पिता को अपने पिता समान ही मानता हूं। मैंने गुरू गृह में रहते समय तुम्हारे साथ जो व्यवहार किया है उसे कहने को आवश्यकता नहीं अब तुम स्नातक हो चुके हो मैं तुमसे प्रेम करती हूं तुम्हारी सेविका हूं। अब विधिपूर्वक तुम मेरे पाणिग्रहण करो। कच ने कहा–बहिन ! भगवान शुक्राचार्य जैसे तुम्हारे पिता हैं, वैसे ही मेरे भी। तुम मेरे लिये पूजनीया हो। जिस गुरू देव के शरीर में तुम निवास कर चुकी हो उसी में मैं भी रह चुका हूं। तुम धर्म के अनुसार मेरी बहिन हो। मैं तुम्हारे स्नेहपूर्ण वात्सल्य की छत्र छाया में बड़े स्नेह से रहा। मुझे घर लौट जाने की अनुमति और आशीर्वाद दो। कभी कभी पवित्र भाव से मेरा स्मरण करना और सावधानी के साथ मेरे गुरूदेव शुक्राचार्य का ख्याल रखना। देवयानी ने कहा मैंने तुमसे प्रेम की भिक्षा मांगी है। यदि तुम धर्म और काम की सिद्धि के लिये मुझे अस्वीकार कर दोगे तो तुम्हारी संजीवनी विद्या सिद्ध नहीं होगी। कच ने कहा बहिन !! मैंने गुरूपुत्री समझ कर ही अस्वीकार किया है, कोई दोष देखकर नहीं। गुरूदेव ने भी मुझे इसके लिये कोई आज्ञा नहीं दी थी। तुम्हारी जो इच्छा हो, शाप दे दो। मैंने तुमको ऋषि धर्म की बात कही थी। मैं शाप के योग्य नहीं था। तुमने मुझे धर्म के अनुसार नहीं, कामके वश होकर शाप दिया है, जाओ तुम्हारी कामना कभी पूरी नहीं होगी। कोई भी ब्राह्मण कुमार तुम्हारा पाहिग्रहण नहीं करेगा। मेरी विद्या सिद्ध नहीं होगी इससे क्या, मैं जिसे सिखाऊंगा उसकी विद्या सफल होगी। ऐसा कह कर कच स्वर्ग में गया। देवताओं ने अपने गुरू वृहस्पति और कच का अभिनन्दन किया, कच को यज्ञ का भागीदार बनाया और यशस्वी होने का वर दिया।

हमारे पूजनीय चिन्मयानन्द जी महाराज ने एक प्रश्न के उत्तर में जो

बातें कही है वह भी मनन योग्य हैं—

प्रश्न :—क्या इस युग में भी ईमानदारी व सच्चाई का कोई महत्व है ?

ऊत्तर :—विशेष रूप से सफल मनुष्य के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण गुण ईमानदारी है। अटूट, अभय, दृढ़, ईमानदारी। यह देखा जाता है कि जिस व्यक्ति ने अपने में यह गुण विकसित कर लिया है। वह उन लोगों की अपेक्षा कई गूढ़ और व्यक्तिगत लाभ उठा लेता है जो उसके साथ उसी क्षेत्र में काम करते हैं।

यदि एक बार एक व्यक्ति अपने आप में ईमानदारी का पूरा गुण विकसित कर लेता है तो वह हर चुनौती का सामना करने के योग्य हो जाता है और वह अपने हर प्रयास में अपने हृदय में एक आन्तरिक विश्वास और सन्तोष रखता है। उसे उसका उचित फल भी मिलता है।

वस्तुतः यह गुण बहुत थोड़े लोगों में होता है। बहुत लोग तो इसका मूल्य ही नहीं समझते हैं। ईमानदार आदमी को सभी लोग चाहते हैं, उस पर विश्वास करते हैं और उसे मित्र बना लेते हैं। हमारे प्रति अन्य लोगों का इस प्रकार आकर्षित होने का अर्थ है कि हमारे आसपास अनुकूल और प्रेरणादायी वातावरण उत्पन्न होता है। और हमें महत कार्य करने का अवसर मिलता है। सामयिक सहायता मिलती है और हम आश्चर्य रूप से सफल होते हैं। हर क्षेत्र में ईमानदारी मनुष्य के लिये एक बड़ी सम्पदा सिद्ध होती है।

ईमानदारी में सन्निहित सज्जनता-व्यक्ति की भावनाओं में गहन रूप से विद्यमान होती है। यदि हमारे विंचारों का श्रोत शुद्ध है और यदि हम अपने आदर्श के लिये साहस और उत्साह से काम करते रहते हैं तो हमारे आदर्श कितने ही अव्यवहारिक और कितने ही काल्पनिक हो हम अपने प्रयास में भले ही बार-बार असफल हों तो भी ईमानदार और सच्चाई के बल से हमें अद्भुत सफलता मिलती है।

इसके उपरान्त, हमारे व्यक्तित्व की आन्तरिक शक्ति चमक उठती है। हर प्रतीयमान असफलता में, पहाड़ जैसी हर भयंकर कठिनाई में, सामाजिक आलोचना के प्रत्येक क्षण में और प्रत्येक खोखले उपहास सहन करने में हमें अपनी सच्चाई और सज्जनता को सुदृढ़ करना होता है और सम्माननीय जीवन जीने के लिये संकल्प दुहराना होता है। अपने आदर्श या अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहने के लिये हर स्थिति में प्रयास करना पड़ता है।

ऐसे ही लोगों का उत्थान होता है शेष सब लोग पद-पद पर परिस्थितियों

से समझौता कर लेते हैं और कोई चुनौती आने पर उसके सामने झुक जाते हैं। वे अपने ही स्वभाव के दास बन जीवन यापन करते रहते हैं, वे कभी वाह्य संसार पर शासन नहीं कर पाते हैं। इसलिये स्पष्ट है कि जीवन में विशेष सफलता पाने के लिये सच्चाई ही सबसे गूढ़ रहस्य है।

केवल संकल्प शक्ति के भरोसे ही जीवन में सफलता नहीं मिल जाती है। कार्य करने का संकल्प जाग्रत होने पर हमारे अन्दर इतनी शक्ति भी होनी चाहिये कि हम उसका सावधानी पूर्वक प्रयोग कर अपने कार्य में सफल हो सके।

यदि हमारी इन्द्रियों पर हमारा ही नियंत्रण नहीं है तो वाह्य संसार पर भी हमारा कोई अधिकार नहीं हो सकता है। इसलिए हम उसके दास बन जाते हैं। इसके फलस्वरूप हमारी शक्तियां बिखर कर हमें आसक्त बना देती है। अन्त में हमारी व्यक्तित्व की गत्यात्मक शक्ति पूर्ण रूपेण विनिष्ट हो जाती है। अब हमारा भौतिक शरीर मृततुल्य, निर्जीव और अकर्मण्य हो जाता है। केवल रक्त—मांस का शरीर इधर उधर चलता फिरता है, आहार और निद्रा लेता है किन्तु उसमें कोई व्यक्तित्व नहीं रहता है। वह योजना बनाने, कार्य करने और सफलता पाने की सामर्थ्य नहीं रखता है। ऐसे व्यक्ति के मन में भावना और बुद्धि में विचार आने की सम्भावना नहीं रहती है। उसमें कोई उत्साह नहीं दिखाई देता है।

ऐसे खोखले, ढांचा मात्र मनुष्य के समाज की सेवा कोई वैज्ञानिक करने में असमर्थ होगा। कोई राजनैतिक, कोई अर्थ शास्त्री उसका उद्धार न कर सकेगा।

लोकमान्य, पूजा दीपावली विशेषांक १९७९

मियां भाई की श्रद्धा

लोकमान्य तिलक अत्यन्त उग्र विचारों के राजनेता थे। वे अपने विरोधियों पर अत्यन्त तीखे प्रहार करते थे, लेकिन उनके वज्रवत व्यक्तित्व में कुसुम से भी कोमल भाव छिपे थे। मियां भाई की विधवा पत्नी ने अपना संस्मरण सुनाते हुए बताया—'तिलक जी जिस समय यरवदा जेल में थे मियाँ भाई वहाँ पहरेदार थे। जिस दिन तिलक जी जेल में आने वाले थे, वहाँ अभूतपूर्व हलचल थी। साहबों के चेहरों के उतार चढ़ाव से यही आभास मिलता था कि कोई बहुत बड़ा कैदी आने वाला है। जेल में सुरक्षा की व्यवस्था उत्तम ढंग से की गई और तिलकजी को एक कोठरी में रख दिया गया। मेरे पति को उस कोठरी का पहरेदार नियुक्त किया गया। उन्हें केवल इतना ही मालूम हो सका कि यह कैदी आजादी की जंग में पकड़ा गया है।

दिन पर दिन बीतते रहे। वह कैदी प्रति क्षण अध्ययन में ही निमग्न रहता था। जेल का नीरस एवं सत्वहीन भोजन उसे रुचता नहीं था। वह थाली को एक ओर हटा देता और बिना किसी प्रकार का विरोध किए अध्ययन में जूट जाता। पर कोई इन्सान कितने दिन भूखा रह सकता है। फल यह हुआ कि कैदी का स्वास्थ्य गिरने लगा। पर वह रहता था एकदम मौन। मेरे पति यह सब देखकर दुःखी होते, पर कर कुछ नहीं सकते थे। मियां भाई का उसके प्रति लगाव और श्रद्धा बढ़ती गयी। उन्हें एक दिन उस कैदी का परिचय भी प्राप्त हो गया। उनके मन में विचार आया कि जीवन और नौकरी की चिन्ता न कर इस महान पुरुष के लिए कुछ करना चाहिये।

उस दिन तिलकजी के थाली जाते ही वापस कर दी। मियां भाई बहुत दुःखी हुए। वे जब घर आये तो खाना तैयार था। उनसे खाने के लिए जब मैंने पूछा तो उन्होंने खाने से इन्कार कर दिया। मुझे चिन्ता हुई, स्वास्थ्य के बारे में पूछा और नजदीक जाकर देखा तो बुखार भी नहीं था। पूछने पर उन्होंने कहा कि पूना से महान स्वतंत्रता सेनानी तिलक नाम के एक ब्राह्मण जेल में आये हैं। उनसे जेल का नीरस भोजन नहीं किया जाता। पर इस विषय पर वे कभी कोई शिकायत भी नहीं करते। जब ऐसा देशभक्त भूखा हो तो मैं कैसे खाऊँ ?

मेरे शोहर ने खाना नहीं खाया तो मैं कैसे खाती ? दोनों भूखे बैठे

रहे। आखिर उन्होंने कहा कि जब मैं आज ड्यूटी पर जाऊं तो तुम वढ़िया खाना वना कर मुझे दे देना, किसी तरह उन्हें पहुचाऊंगा। विचार तो अच्छा था, पर मैंने शंका व्यक्त की कि वे एक ब्राह्मण है, मुसलमान के हाथ का कैसे खाएंगे? फिर खामोशी छा गई।

मियां भाई कुछ देर बैठे सोचते रहे, फिर पूना की ब्राह्मण वस्ती में चले गये और जाकर वातचीत में एक ब्राह्मण से पूछा कि मेरे एक ब्राह्मण मित्र हैं, वे मेरे हाथ की कौन सी वस्तु स्वीकार कर सकते हैं? आप बतायें, मैं तदनुसार ही कुछ कर अपनी भावना की पूर्ति करना चाहता हूं। उसने कहा कि मूंगफली, खजूर, नारियल एवं गुड़ के लड्डू वना कर दो।

मियां भाई सारी चीज खरीद कर घर आये। उनके चेहरे पर अजीव रौनक थी। वे जेल में लड्डू ले गये और मौका देखकर लड्डू वाली झोली तिलकजी को देकर खाने का आग्रह करने लगे। बार-बार के आग्रह से तिलकजी का फौलादी अन्तर पिघल गया। पर वे मना करते रहे। तब मियांजी ने कहा कि साहब आपने खाना नहीं खाया, अतः मैंने तथा मेरी पत्नी ने भी खाना नहीं खाया। अगर आप लड्डू नहीं खायेंगे तो हम लोग भी खाना नहीं खायेंगे।

अद्भुत दृश्य था। प्रेम के आंसू भर कर तिलकजी ने लड्डू लेकर मियां भाई से कहा कि पहले आप लें, लेकिन मियां भाई ने कहा कि पहले आप। अंत में दोनों ने एक-दूसरे के मुंह में लड्डू देकर अनशन तोड़ा। फिर मैंने तथा मेरे शौहर ने भी खाना खाया। जब तिलकजी रिहा होकर जाने लगे तो मियां भाई ने कहा—'साहब! आप जा रहे हैं, मैं भी ऐसी जुल्मी सरकार की नौकरी छोड़ दूंगा। पर तिलकजी ने समझाया कि तुम देश-भक्तों की सेवा करने के लिये रहो तुम्हारे रहने से उन्हें काफी राहत मिलेगी।'

कुछ दिनों के वाद मियां भाई तिलकजी से मिलने की तीव्र उत्कंठा लेकर गायक वाडवाडा गये। तिलकजी अपने दीवान खाने में बैठे कुछ सज्जनों से बात कर रहे थे। मियां भाई को देखते ही उठे और आलिंगन में बांध लिया। मानो दो बिछुड़े भाई बहुत दिनों के बाद मिल रहे हों। उन्होंने मियां भाई को अपने साथ ही बिठा लिया। मित्रगण हक्का-बक्का थे। तिलकजी ने उन्हें मियां भाई का परिचय दिया। पत्नी से भी उनका परिचय कराया। वे वहुत ही प्रसन्न होकर वोली कि इन्हें क्या कहूं—देवर या भाई? दो भिन्न धर्मी परिवारों की इस सहज आत्मीयता को रिश्ते के किन शब्दों में बांधा जाये।

उन्होंने मियाँ भाई को प्रेम से भोजन खिलाया और विदा लेते समय रुपयों से भरी थैली भेंट करने लगे। मियां भाई ने इन्कार कर दिया। तभी तिलकजी की रेशमी शाल मियांजी की गोद में गिर पड़ी, जिसे उन्होंने देश-भक्त की महान भेंट मानकर ले लिया। मियाँ भाई ने उस अनमोल उपहार को खूब सम्भाल कर रख दिया।

एक बार मेरे गाँव में हैजे का प्रकोप हुआ। मेरा इकलौता जवान लड़का भी उसकी चपेट में आ गया। जब कोई दवा काम न आई तो हम लोग निराश होकर अल्लाह का नाम लेते रहे। तभी मियां भाई को उस शाल की याद आयी, जिसके रेशे-रेशें में श्रद्धा बुनी हुई थी। उन्होंने वह लड़के पर डाल दी।

लड़के की नाड़ी लगभग शीतल हो चुकी थी केवल अल्लाह का ही सहारा था, पर सुबह जब मियां भाई ने शाल उठाकर देखा तो सभी आश्चर्य-चकित थे। लड़के ने अब्बा से कहा कि अब मुझे अच्छा लग रहा है। और धीरे-धीरे वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया।

इस प्रकार श्रद्धा ने अपना अपूर्व चमत्कार दिखाया, मियाँ भाई के शब्द सही उतरे। गोस्वामी तुलसी दास ने कहा है---

श्रद्धा बिना न फल मिले, श्रद्धा सुख का मूल।
श्रद्धा यदि मन में नहीं, फूल बनेगा शूल।

कथालोक, जनवरी १९८०

प्रेम स्वरूप भक्ति में सुख-अमरता

श्री नारदजी तो भगवान के परम भक्त रहे हैं। वे कभी-कभी अपनी भक्ति का भगवान श्रीकृष्ण के सन्मुख यह कह कर वर्णन किया करते थे कि मेरे समान आपका कोई दूसरा भक्त नहीं है। इस पर भगवान कृष्ण ने उन्हें प्रत्यक्ष रूप से उन्हीं के द्वारा दर्शन करवाया वृज की गोपियों की भक्ति के माध्यम से। श्री नारदजी स्वीकार करते हुए अपने भक्ति दर्शन के सूत्र निर्माण करने लगे तब उन्होंने लिखा—

तस्मिन् तन्मुख सुखित्वम्
यथा वृज गोपिकानाम्।

गोपियाँ प्रेम की पावन ध्वजा है और वीणा वजाते हुए स्वर्ग लोक को चले गये।

इस कथा में राग तथा प्रम के विषय में अलग-अलग समझाया गया है। राग से मोह और आसक्ति होती है और प्रेम में मोह आसक्ति नहीं होती है। प्रेम निर्विकार है प्रेम का न तो बदला है न क्रोध है और बिलकुल निश्चल तथा उसमें सुख ही सुख है।

संध्या के समय नारदजी और सत्येन्द्र पुष्पवाटिका में टहलते हुये निकल गये। दोनों विचरण करते-करते जहाँ पर फव्वारा चल रहा था बैठ गये। फव्वारे की पानी की पतली कणों से सूर्य की गुलाबी किरणों से वो कण चमक रहे थे। रजनीगंधा पूर्व से आती हुई सुकुमार निशामालिनी के अंचल को सुवासित कर रही थी। दिन भर के प्रवास से लौटते हुए पंक्षी विविध स्वरों में उनका अभिनन्दन कर रहे थे।

सत्येन्द्र ने कहा—महाराज आप भगवान के परम प्रिय भक्त हैं आपके हृदय में भक्ति का अविचल वास है। आपकी वाणी में अमृत है। आप जो कुछ कहेंगे उसे में श्रद्धा सहित सुनूँगा।

नारदजी बोले-ब्राह्मण हर प्राणी की कहीं न कहीं आसक्ति होती है। मनुष्य की भी वही स्थिति है। अधिकांश मनुष्य विषयों में और अपने शरीर और परिवार में आसक्त होते हैं। जिसकी जहाँ आसक्ति होती है, वहां उसका राग होता है। राग एक ऐसा आन्तरिक बन्धन है जो हमें विषयों से बाँध रखता है। राग न रहने पर उस वस्तु या व्यक्ति से आसक्ति भी नहीं रहती है। इस राग को ही संसारी लोग अज्ञान से प्रेम कहते हैं। वास्तव में राग प्रेम नहीं है और न प्रेम में ये दोष है। राग और प्रेम में केवल यह

समानता है कि ये दोनों मन की वृतियाँ है और जिस किसी से उनका सम्बन्ध होता है वह सुखद प्रतीत होता है । किन्तु दोनों में बहुत अन्तर है। राग अन्धा होता है, प्रेम नहीं, राग बन्धनकारी होता है प्रेम नहीं, राग में ही दुख भी होता है प्रेम में नहीं। अतः मन की रागात्मक वृत्ति से ये दोष निकल जायें तो वही भाव प्रेम कहलायेगा।

राग में बदले की भावना होती है। हमें ज़िस वस्तु से राग होता है उससे हम सुख की कामना करते हैं। प्रेम में ऐसी कोई कामना नहीं होती है। यदि किसी वस्तु में या व्यक्ति में ऐसे कोई गुण हैं जो हमें अच्छे लगते हैं जिनको देख कर या स्मरण कर मन प्रसन्न हो जाता है तो उसमें हमारा प्रेम होता है। अतः प्रेम एकांगी होता है। प्रेम जिस हृदय में उत्पन्न होता है उसी तक सीमित रहता है।

दूसरे शब्दों में जब इन्द्रियों को तृप्त करने वाले विषय में आसक्ति होती है और उनसे इन्द्रिय सुख की कामना होती है तो उसे राग कहते हैं। और जब विषय से इन्द्रिय सुख की कामना न होकर उसमें विद्यमान गुण के प्रति सराहना करने का भाव आता है तो सूक्ष्म, सात्विक और पवित्र है। उसके मूल में कोई कामना न होने के कारण दुःख की कोई सम्भावना नहीं होती है। फिर भी प्रेम की न्यूनाधिकता प्रेम पात्र के गुणों पर ही अवलम्वित होती है। जहाँ गुण उत्कृष्ट और निर्विवाद होते हैं वहाँ प्रेम अधिक होता है। इसी क्रम से जहाँ गुणों की अतिशयता होती है और उनमें कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती है उसमें परम प्रेम होता है।

राम ऊमित गुन सागर,
थाह कि पावई कोई।
संतन्ह सन जस किछु सुनेउ,
तुम्हहि सुनायउ सोई।

प्रेम का ऐसा अवलम्बन जिसमें कोई दोप न हो, सब गुणों का भंडार हो. एक परमात्मा ही हो सकता है। वह पूर्ण है, निर्विकार है, समस्त गुणों की खानि है।

जो परमात्मा के गुणों को कुछ भी जानता है उसके मन में परमात्मा के लिए प्रेम अवश्य जागृत होता है। परमात्मा के गुण शास्त्रों से और संतों के मुख से सुन कर ही जाने जाते है। हम उन गुणों को जितना ही अधिक जानते हैं उतना ही उनके प्रति प्रेम रखने लगते हैं।

इस परम प्रेम की निरन्तरता ही भक्ति है। परमात्मा ही सर्वत्र दिखाई दे, उसके बिना सब कुछ मिथ्या और खोखला दिखाई दे, उसका ही

निरन्तर चिन्तन होता रहे ऐसा ही अटूट परम प्रेम भक्ति कहलाता है। कहीं-कहीं भक्ति को अनन्य प्रेम भी कहा जाता है। वस्तुतः प्रेम के साथ, प्रेम-पात्र में पूज्य भाव और श्रद्धा भी सम्मिलित होने पर जो एक मिश्रित हृदयानुभूति होती है वही भक्ति है। भक्त के हृदय में परमात्मा के प्रति प्रेम होता है क्योंकि वह परमात्मा के सर्वशक्तिमता, सर्वज्ञता करुणा, दया आदि गुणों से आकृष्ट होता है। अपने में इन गुणों के अभाव के कारण हीन बुद्धि और परमात्मा में पूज्य बुद्धि होती है। भक्त अपने परमात्मा के सामने समर्पित कर देना चाहता है। यही उसकी श्रद्धा है। इस प्रकार भक्ति में प्रेम, पूज्य भाव और श्रद्धा सम्मिलित होती है। भगवान राम ने सबरी की भक्ति से प्रसन्न होकर उसे नवधा भक्ति का रहस्य बताया।

जाति पांति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई ।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिय जैसा ।।
नवधा भगति कहउँ तोहि पाहिं। सावधान सुनु धरु मन मांही ।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।
दोहा :—गुर पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन, गन करई कपट तजि गान ।।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन जो वेद प्रकासा ।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा ।।
सातवं सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा ।।
आठवं जथालाभ संतोषा। सपनेहुं नहिं देखइ परदोषा ।।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियं हरष न दीना ।।

भक्ति का मुख्य लक्षण प्रेम ही है। परमात्मा के प्रति हमारा अगाध प्रेम ही भक्ति का सृजन करता है। श्रद्धा और समर्पण उसके आनु-संगिक भाव है। प्रेम उन सब में प्रधान और सर्व प्रथम है। किन्तु प्रेम का भी कुछ कारण होता है। अकारण प्रेम नहीं होता है। प्राणी की स्वाभाविक इच्छा आनन्द प्राप्त करना है। यह कारण पूछना व्यर्थ है कि कोई व्यक्ति पूर्ण आनन्द क्यों चाहता है। दुःख की अनिच्छा और सुख की इच्छा स्वाभाविक है। सुख की इच्छा का अर्थ है सुख से प्रेम। प्रेम और सुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहां सुख है वहीं प्रेम है और जहां प्रेम है वहीं सुख है। सुख में स्वाभाविक मधुरता है, मिठास है और जहां अधिक मिठास है वहीं परम प्रेम है। अन्त में परम प्रेम भक्ति है। अतः यदि भक्ति को अमृत के समान मधुर कहें तो कोई त्रुटि नहीं होगी।

भक्ति, अमृतस्वरूपा है

अमृत केवल मधुर ही नहीं होता है, यह जिसके कंठ में पहुंचता है उसे अमर भी कर देता है जैसे हर प्राणी सुख चाहता है, वैसे ही वह अमरता भी चाहता है। मरना कोई नहीं चाहता। मरने से भय और दुःख होता है। अमरता और सुख सहगामी है। अतः यदि भक्ति में प्रेम है और प्रेम में सुख है तो सुख के साथ अमरता भी भक्ति में विद्यमान होनी चाहिए। भक्त का कभी विनाश नहीं होता।

हर सेवक हिं न व्याप अविद्या
प्रभु प्रेरित व्यापई तेहि विद्या
ताते नास न होई दास कर
भेद भगति बाढ़इ विहंगवर

जिसके हृदय में भक्ति आ गई वह अमर हो जाता है और परमानन्द में मग्न रहता है। जो आदमी परम भक्त हैं वह अपने खुद ही सोचता है कि मैं अमर हूँ। मैं कुछ काल के लिए मानव शरीर में आ पड़ा हूँ तो भी मैं जानता हूँ कि मैं नारद हूँ। मैं वही नारद हूँ जो आदिकाल से हरि-गुणगान करता हुआ आनन्द से विचरण करता है। मुझे जो सुख प्राप्त है उसका वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ। भगवान की कृपा से मैं सदा निर्भय और निश्चिन्त रहता हूँ। इसी से तुम जान सकते हो कि भक्ति परम प्रेम स्वरूपा और अमृत स्वरूपा है। एक बार जिस व्यक्ति को इसका स्वाद मिल गया वह इससे विमुख नहीं हो सकता। भक्ति की जितना महिमा कही जाय थोड़ी है इस विषय पर थोड़ा बहुत जितनी भी विस्तार से कहा जाय उतना ही भगवान के प्रति उसकी श्रद्धा बढ़ती है। इस समय मेरा मन भगवान के ध्यान में डूबा जा रहा है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

चाहिए। राजाको मित्रों की रक्षा करनेमें कभी असावधानी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि असावधान राजा का सब लोग तिरस्कार करते हैं। मनुष्य का चित्त चंचल होता है, भला मनुष्य बुरा और बुरा भला हो जाया करता है, शत्रु मित्र और मित्र शत्रु बन जाता है, अत: किस पर कौन विश्वास करे ? इसलिए मुख्य-मुख्य कार्यों को दूसरों पर न छोड़कर अपने सामने ही कराना चाहिये। किसी पर भी पूरा-पूरा विश्वास कर लेने से धर्म और अर्थ दोनों नाश होता है। दूसरों पर पूरी तरह विश्वास करना अकाल मृत्यु को मोल लेना है, अन्धविश्वासी को विपत्ति में पड़ना पड़ता है। वह जिस पर विश्वास करता है, उसी की इच्छा पर उसका जीना निर्भर रहता है। इसलिये राजा को कुछ लोगों पर विश्वास भी करना चाहिये और उनकी ओर से सतर्क भी रहना चाहिये। यही सनातन राजनीति है।

अपने अभाव में जिस मनुष्य का राज्य पर कब्जा हो सकता हो उससे सदा चौकन्ना रहना चाहिये, क्योंकि विज्ञ पुरुषों ने उसकी शत्रुओं में गणना की है। जो मनुष्य राजा का अभ्युदय देख उसकी और भी अधिक उन्नति चाहे और अवनति होने पर बहुत दुखी हो जाय, वही उत्तम मित्र है। अपने न रहने पर जिस व्यक्ति की विशेष हानि पहुंचने की सम्भावना हो, उस पर पिता के समान विश्वास करना चाहिये और जब अपने धन की वृद्धि होती हो तो यथाशक्ति उसको भी समृद्धिशाली बनाना चाहिये। जो धर्म के कामों में भी राजा को नुकसान से बचाने का ध्यान रखता है, उसकी हानि देख कर जिसको भय होता है उसे ही उत्तम मित्र समझो। नुकसान चाहने वाले तो शत्रु ही बताये गये हैं। जो मित्र की उन्नति देख कर जलता नहीं और विपत्ति देख कर घबरा उठता है, वह मित्र अपने आत्मा के समान है। जिसका रूप-रंग सुन्दर और स्वर मीठा हो, जो क्षमाशील, ईर्ष्या रहित, प्रतिष्ठित और कुलीन हो, उसकी श्रेणी पूर्वोक्त मित्र से भी बढ़ कर है। जिसकी बुद्धि अच्छी और स्मरणशक्ति तीव्र हो, जो कार्य साधने में कुशल और स्वभावत: दयालु हो, कभी मान या अपमान हो जाने पर जिससे हृदय में खुभीव नहीं आता ऐसा मनुष्य यदि ऋत्विज, आचार्य अथवा अत्यन्त सम्मानित मित्र हो तो उसे तुम अपने घर में मन्त्री बना कर रख सकते हो, वह तुम्हारे विशेष आदर का पात्र है। उसको राजकीय गुप्त विचारों तथा धर्म और अर्थ की प्रकृति से परिचित रखना। उसके ऊपर तुम्हारा पिता के समान विश्वास होना चाहिये। एक काम पर एक ही व्यक्ति को नियुक्त करना, दो या तीन को नहीं, क्योंकि उनमें परस्पर अमर्ष हो जाने की सम्भावना रहती है। कारण कि एक कार्य पर नियुक्त हुए अनेक व्यक्तियों में प्राय: मतभेद होता ही है।

जो कीर्ति को प्रधानता देता और मर्यादा के भीतर कायम रहता है, शक्तिशाली पुरुषों से द्वेष और अनर्थ नहीं करता, कामना, भय, लोभ अथवा क्रोध से भी जो धर्म का त्याग नहीं करता, जिसमें कार्य कुशलता तथा आवश्यकता के अनुरूप बातचीत करने की पूरी योग्यता हो, उसे तुम अपना प्रधान मन्त्री बनना। जो कुलीन, शीलवान, सहनशील, डींग न मारने वाले, शूरवीर, आर्य, विद्वान तथा कर्तव्य-अकर्तव्य को समझने में कुशल हों, उन्हें अमात्य के पद पर बिठाना एवं सत्कारपूर्वक सुख और सुविधा देना। यह तुम्हारे अच्छे सहायक सिद्ध होंगे और सब तरह के कामों की देख-भाल करेंगे।

युधिष्ठिर! तुम अपने कुटुम्बियों को मृत्यु के समान समझ कर उनसे सदा डरते रहना। जैसे पड़ोसी राजा अपने पास के राजा की उन्नति नहीं सह सकता, उसी प्रकार एक कुटुम्बो दूसरे कुटुम्बी का अभ्युदय नहीं सह सकता। जिसके कुटुम्बी या सगे-सम्बन्धी नहीं है, उसको भी सुख नहीं मिलता, इसलिये कुटुम्बी जनों की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। बन्धु-बान्धव से हीन मनुष्य को दूसरे लोग दबाते रहते हैं। दूसरों के दबाने पर अपने भाई-बन्धु ही सहारा देते हैं। यदि गैर आदमी अपने जातिवाले का अपमान कर रहा हो, तो सजातीय बन्धु उसे कभी बरदास्त नहीं कर सकता। अपने जातिवाले के अपमान को वह अपना अपमान समझेगा। इस प्रकार कुटुम्बीजनों के रहने में गुण भी है और अवगुण भी। कुटुम्ब का व्यक्ति न अनुग्रह मानता है, न नमस्कार करता है। उनमें भलाई-बुराई दोनों देखने में आती है। राजा का कर्तव्य है कि वह अपने जातीय बन्धुओं का वाणी और क्रिया से सत्कार करे। सदा ही उनकी भलाई करता रहे, कभी कोई बुराई न होने दे। उन पर विश्वास तो न करे किन्तु विश्वास करने वालों की भांति ही उनके साथ बर्ताव करे। उनमें दोष है या गुण—इसकी चर्चा न करे। जो पुरुष सदा सावधान रह कर ऐसा बर्ताव करता है, उसके शत्रु भी प्रसन्न होकर उसके साथ मित्रता का बर्ताव करने लगते हैं। जो कुटुम्बी सगे सम्बन्धी, मित्र, शत्रु तथा उदासीन व्यक्तियों के साथ इस नीति के अनुसार व्यवहार करता है, उसका सुयश चिर काल तक बना रहता है।

॥ समाप्त ॥

भक्तिप्रेमाविण ज्ञान नको देवा। अभिमान नित्य नवा तयामाजीं
प्रेम-सुख देई प्रेम-सुख देई। प्रेमें विण नाही समाधान
एक जनार्दनी प्रेम अति गोड। अनुभवी सुखाड जाणतील

भक्ति के स्वरूप और उसके गौरव का वर्णन करते हुए एकनाथ महाराज कहते हैं—भक्तिप्रेमाविण ज्ञान नको देवा----हे भगवन्! मुझे भक्ति प्रेम ही दो। रूखा-सूखा वेदांती ज्ञान नहीं चाहिए। भक्ति—प्रेम-युक्त ज्ञान चाहिए। बच्चे की अपनी माँ पर भक्ति भी होती है और प्रेम भी होता है। उसको सिखाना नहीं पड़ता कि तुम अपनी मां पर प्यार करो या उसके लिए अपने मन में भक्ति रखो। उसके लिए वह सहज क्रिया है। उसी माध्यम से उसको ज्ञान भी मिलता है। इसलिए भक्त हमेशा भगवान के चरण कमल के पास ही रहना पसन्द करता है। उसकी नम्रतापूर्वक सेवा करके उसकी शरण में रहना पसन्द करता हैं। संतों ने कहा ही है—गोड तुझी चरण—सेवा। तुम्हारे चरणों की उपासना ही मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ है। इसलिए एकनाथ महाराज ने भक्ति-प्रेम विरहित ज्ञान की अपेक्षा नहीं की है। यह जो ज्ञान है, वह केवल विद्वता वाला, शास्त्रों के विषय का ज्ञान नहीं है। परमात्मात्म--साक्षात्कार-साधनं ज्ञानम्—जो परमात्मसाक्षात्कार का साधन है, ऐसे ज्ञान की यहां अपेक्षा है। शंकराचार्य ने ज्ञान का अर्थ बताया है—इदं एव सम्यक्ज्ञानं साक्षाद् मोक्ष-प्राप्ति साधनम्। सम्यक्ज्ञान जो मोक्ष-प्राप्ति का साधन है। इसलिए ज्ञान केवल स्वर्ग प्राप्ति तक ही सीमित नहीं है, वह मोक्ष की प्राप्ति का साधन है।

भक्ति के पीछे मुक्ति आ जाती है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, भाव के बिना भक्ति नहीं और भक्ति के बिना मुक्ति नहीं। इसलिए नाथ महाराज ने भी भक्ति को ही प्राधान्य दिया है। वे कहते हैं—भक्तीचे उदरीं जन्म लें ज्ञान। भक्तीनें ज्ञानासी दिधलें महिमान—भक्ति से ही ज्ञान का जन्म हुआ है। और भक्ति के कारण ही ज्ञान को महानता प्राप्त हुई है।

फिर कहते हैं—अभिमान नित्य नवा तयामाजीं। शास्त्रीय या पाण्डित्यपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने से रोज नया अभिमान आता रहेगा। शास्त्र ज्ञान प्राप्त विद्वान वाद विवाद में ही लगते हैं। वाद-विवाद में हम ही विजयी हो जाय यह उनकी सदैव कोशिश रहती है ऐसे लोगों को अपने ज्ञान का कभी अहंकार भी हो सकता है। भक्त कभी भी अहंकार होने नहीं देगा। वह सब कुछ ईश्वर के चरणों में अर्पण कर देगा। वह केवल ईश्वर की प्रेमपूर्वक भक्ति, सेवा, उपासना करना ही जानता है।

आगे कहते हैं—प्रेम-सुख देई प्रेम-सुख देई। प्रेम विना नाहीं समाधान। केवल प्रेम-सुख दो, प्रेम के अलावा मुझे किसी भी चीज से समाभान नहीं होगा। एकनाथ महाराज प्रेम का सुख क्यों माँग रहे हैं? प्रेम यानी भगवान के लिए उत्कट भक्ति। ऐसी उत्कट भक्ति का सुख मांग रहे हैं।? सुख कई प्रकार के होते हैं। कोई सांसारिक कामों में ही सुख मानता है। किसी को स्वार्थ प्रेरित कर्म में सुख है। किसी को पढ़ने में, कई पुकार है। लेकिन एकनाथ महाराज ने भक्ति का सुख मांगा। ऐहिक सुख की इच्छा नहीं की। सुख यानी तन्मयता, अनन्यता, भावपूर्णता का पूर्ण समाधान, परमशांति। तन्मयता पूर्वक ईश्वर की भक्ति करने में जो सुख या आनन्द प्राप्त होता है वही सही सुख है, उसी में अन्तः समाधान है।

आखिर में कहते हैं—एक जनार्दनी प्रेम अति गोड। अनुभवी सुखाड जाणतील। जनार्दन स्वामी का शिष्य एकनाथ कहता है कि प्रेम बहुत ही मधुर हैं। इस प्रेम का आनन्द अनुभवी लोगों ने देखा है। ईश्वर भक्त का प्रेम अखंड रहता है। उसमें कमी कभी आ नहीं सकती। वह प्रेम नित्य बढ़ता ही जाता है। इसकी जानकारी अनुभवी लोगों ने दी है। अपने खुद का अनुभव से वह कह रहे हैं मनुष्य कितना ही ज्ञान प्राप्त कर ले जब तक ईश्वरीयपरायण नहीं होता या भक्ति का आश्रय नहीं लेता तब तक उनका ज्ञान व्यर्थ, निरर्थक है। इसलिए एकनाथ महाराज ने साधकों को आज्ञा दी भक्ति ज्ञानाविरहित गोष्टी इतरा नकराव्या। भक्ति ज्ञान के अलावा और किसी भी विषय की चर्चा नहीं करनी चाहिए। सवाल यह आता है कि भक्ति की कोई चर्चा करता है? भक्ति तो आन्तरिक स्थिति होती है। भक्ति की चर्चा यानी नित्यनिरंतर ईश्वर-चिन्तन, ईश्वर-मनन, और सामूहिक ईश्वर नाम-संकीर्तन।

ऐसी आत्यंतिक भक्ति के कारण ही एकनाथ महाराज करुणा से ओत-प्रोत थे। सर्वत्र और सदैव उनकी भगवत् प्रेम-भावना ही प्रबल और अचल होती है। केवल मनुष्य प्राणियों में ही नहीं पशुओं में भी उनको प्रेम स्वरूप भगवान का दर्शन होता है इसलिये इनकी भक्ति समाजोत्थान के लिये प्रवृत हो रही है।

मित्र-अमित्रों की पहचान

मित्र अमित्र की पहचान करने में वड़ी सावधानी वर्तनी चाहिए। मैं अपना कुछ अनुभव पाठकों के सामने रखता हूँ। कई दफा ऐसा देखा गया है जो सच्चे मित्र हैं—वह अपने मित्र की परपूठ याने दूसरे के सामने हमेशा अपने मित्र की प्रशंसा करते रहते हैं। उसके वदले कोई कमी अपने मित्र में देखते हैं, तो निज के नाते अपने में सलाह करते हैं। यह काम अपने लायक नहीं है अपने को नहीं करना चाहिए। वह सच्चे मित्र कहलाने के योग्य समझे जाते हैं। जो मित्र के सामने तो उसकी प्रशंशा करते हैं—पीठ पीछे उसकी निन्दा करते हैं। वह मित्र का काम न करके अमित्र का काम करते हैं।

एक दफे हम तीन-चार मित्र १९३५ में जालंधर गये कुछ विशेष काम के लिए, वहाँ हमारे एक परम मित्र श्री सुदर्शनजी अग्रवाल वड़े पोपुलर तथा समाज में वहुत ख्याति प्राप्त सज्जन थे। उनके यहां हमलोगों की ठहरने की बात थी--जैसे हमलोग उनके घर पहुंचे संयोगवश वह घर में नहीं थे कहीं घर से वाहर काम के लिये गये हुए थे। उनके आदमियों ने हमें उनकी बैठक में ठहरने को कहा, हम जैसे उस रूम में प्रवेश किया सामने ही एक तस्वीर में देखा उसमें लिखा हुआ था Save my friends (मुझे मेरे दोस्तों से बचावो) हमलोग यह देख कर बैठक में न बैठ कर बाहर ही बैठ गये। कुछ समय में श्री अग्रवालजी घर में आये हमलोगों को बाहर बैठे देखकर वड़े संकोच में बोले क्षमा करेंगे। मुझे बहुत जरूरी काम से जाना पड़ा। बाकी आपलोग बाहर क्यों बैठे हैं। मेरे आदमी ने आपको भीतर बैठने के घर में नहीं बैठाया। हमलोगों ने कहा नहीं आपके आदमी ने वहुत ही अच्छा हमलोगों का स्वागत किया और भीतर बैठने का आग्रह किया लेकिन बैठकखाने में आपका यह लिखा हुआ देख कर कि मेरे दोस्तों से मुझे बचावो हमलोग जानकर वाहर बैठे विना इस बात को पूरी जाने कैसे भीतर बैठते तो उन्होंने हँसते हुए सारा किस्सा बताया किस माफिक मैंने मेरे दोस्तों का विश्वास किया और उन्होंने किस माफिक पीछे से छुरी मार कर मुझे बहुत कष्ट दिया तब यह केवल यादगार के लिए इसे छपवा कर रख छोड़ा है फिर से धोखा न खाना पड़े। उस समय से वरावर यह ख्याल रहता है सच्चे मित्र की खोज करनी चाहिये।

ऐसे ही दूसरी दफे अनुभव हुआ मुझे हावड़े से पश्चिम बंगाल एसबली

के चुनाव में खड़ा किया गया जिनके बहुत ज्यादा वोट थे--उनसे डा० बी०सी० राय की बहुत जान पहचान थी तथा वह अपना आदमी खड़ा करना चाहते थे हावड़े में उनकी बहुत मिलें तथा कारखाने हैं। जिस एरिया से मुझे खड़ा किया गया था उसमें उनकी दो जूट मिलें थी उस मिल के मजदूरों का तथा कर्मचारियों का करीब ८७५० वोट थे। डा० बी०सी० राय यहां के मुख्य मन्त्री थे उनसे कहा आपके आदमी को हम खड़ा नहीं कर सकते इसलिए श्री भुवालका को ही खड़ा करना है यही आज्ञा सेन्ट्रल एलेक्शन कमेटी की है। जब मैं जाकर हावड़ा में इस आशा से खड़ा हुआ तथा रहने लगा। जगह-जगह वोटरों के पास जाकर प्रार्थना करता था तो बंगाली समाज सदस्य बराबर करते रहते थे हमारे जितने वोटों की आशा आप करते हैं उससे आपको ५-१० वोट ज्यादा मिलने की आशा करनी चाहिये लेकिन आपके भाइयों के वोटो को आप सावधानी से दिलवाने की चेष्टा करें--मुझे कभी भी यह ख्याल नहीं था कि इन दो मिलों के वोट कांग्रेस को नहीं मिलेंगे बाकी वोट के दिन यही हुआ ८७५० वोटों के बदले १७५ वोट मिले और बंगाली समाज में वोट ज्यादा मिला। कांग्रेस हार गई। एक कम्युनिस्ट सदस्यकी जीत हुई--मुख्यमन्त्री ने जब सुनी और सारे बुथोंके कागज मंगा कर देखा तो उन मिल मालिकों को बुला कर बहुत कहा सुनी की। यह है मित्र तथा अमित्र की पहचान। मैंने केवल एक दो अनुभव आपके सामने रखे हैं इस पर एक बड़ी सुन्दर कथा भी महाभारत में है जो सबके पढ़ने लायक है, आपके सामने रखी जाती है।

युधिष्ठिर ने पूछा--पितामह ! छोटे-से-छोटा काम अकेले किसीकी सहायता के बिना करना कठिन हो जाता है। फिर राजा का कार्य तो दूसरे की सहायता लिये बिना हो ही कैसे सकता है ? इसलिए मंत्री का होना आवश्यक है। अब आप बताइये, राजा का मंत्री कैसा होना चाहिये ? उसका स्वभाव और आचरण किस तरह का हो, कैसे व्यक्ति पर विश्वास किया जाय और किस पर नहीं ?

भीष्मजी ने कहा—राजा के चार प्रकार के मित्र होते हैं—सहार्थ, भजमान, सहज और कृत्रिम। पाँचवा मित्र धर्मात्मा होता है, वह किसी एक का पक्षपाती नहीं होता और न दोनों पक्षों से वेतन लेकर कपटपूर्वक दोनों का ही मित्र बना रहता है। जिधर धर्म का पल्ला मजबूत रहता है, उसी पक्ष का वह आश्रय ग्रहण करता है अथवा जो राजा धर्म में स्थित होता है, वही उसे अपनी ओर खींच लेता है। उपर्युक्त मित्रों में से भजमान और सहज श्रेष्ठ समझे जाते हैं, शेष दो की ओरसे तो सदा सशंक रहना चाहिये। वास्तव में तो अपने कार्य को दृष्टि में रख सब प्रकार के मित्रों से सावधान रहना

संत एकनाथ की कथा

भक्ति से सुख की प्राप्ति

बहुत से ग्रंथों में भक्ति के मार्ग को उच्च स्थान दिया गया है। गीता में तीन बातों की प्रधानता बताते हैं और उसमें कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों ही अपने अपने हिसाब से बहुत उच्च दर्जे के माने गये हैं फिर भी भक्ति सरल है क्योंकि उसमें ईश्वर की प्राप्ति का सरल साधन बताया गया है। कर्म में कई रकम की ऐसी व्याख्या की गई है जिसके नाना रकम के विद्वानों का, संतों का विचार भिन्न भिन्न था बताया गया। ज्ञान के बिना कोई बात समझ में नहीं आती तो भी ज्ञान की परिभाषा बहुत कठिन है उसको समझने के लिये बहुत कुछ निर्मल बुद्धि चाहिये। भक्ति को ऐसा बताया गया, भक्ति में केवल ईश्वर का नाम स्मरण, ईश्वर पर श्रद्धा, ईश्वर के प्रति प्रेमी निर्भिमान, संत समागम, सत्य वचन, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, ममता इन सब से भक्ति के द्वारा ही छुटकारा पाने का साधन है। इसलिये बहुत सी जगह भक्ति के मार्ग को सरल बता कर उसके लिये चेष्टा करने की प्रेरणा संतलोग देते रहे आज भी उनके यही प्रेरणादायक प्रवचन सुनने को मिलता है।

कहा जाता है कि भगवान भक्ति के लिये भूखा होता है। लेकिन 'भगवान भूखा है' यह बात अजीब सी लगती है। भगवान कैसे भूखा रह सकता है? यह तो परिपूर्ण है। लेकिन, ऐहिक अपेक्षा से वह भूखा नहीं, वह भक्ति के लिये भूखा है। भक्त की मदद के लिये व्यग्रता से राह देखता है लेकिन भगवान की यह आकुलता मनुष्य की समझ में नहीं आती। वह अज्ञानाधंकार में—संसार में डुबा हुआ रहता है। भगवान अपने सखा अर्जुन से कहते हैं—

> अनन्याश्चिंतयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते
> तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्

जो भक्त अनन्त भाव से मेरी भक्ति करता है, उसका योगक्षेम में वहन करता हूं, उस भक्त की सारी जिम्मेवारी मैं उठाता हूं। अनन्याः यानी 'मदन्यविषयरहित'—मैं परमात्मा—यह एक ही विषय जिसका हुआ है ऐसी अनन्य भक्ति। ऐसे भक्त की भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों प्रकार की चिंताएं भगवान स्वयं करते हैं।

करीब ५०० वर्ष पूर्व महाराष्ट्र में संत पुरुष एकनाथ महाराज हो गये हैं। महाराष्ट्र के श्रेष्ठ पाँच संतों में से वे एक हैं। उन्होंने अपने अभंगों में एक जगह कहा है—आवडीनें भावे हरिनाम घेसी। तुझी चिंता त्यासी सर्व आहे—हे जीव। तू प्रेमपूर्वक, हृदय से ईश्वर का नाम स्मरण

कर, फिर भगवान ही तेरी सब चिंता करेगा, तुझे कुछ करना ही नहीं पड़ेगा। केवल भावयुक्त नाम स्मरण करो। तुम्हारी अनन्यता देखकर वह तुम्हारी रक्षा के लिये दौड़े आयेंगे। भगवान भक्त की मदद के लिये किस तरह से उपस्थित होते हैं उसकी एकनाथ महाराज के जीवन की ही एक झांकी है।

एकनाथ महाराज की भक्ति देख कर भगवान प्रसन्न हुये और उनके घर में एक सामान्य सेवक के रूप में आकर उनकी सेवा करने लगे। नाम बताया श्रीखंडया। घर के सभी काम वह करता था। वह कौन है, कहां का है, यह कोई नहीं जानता था। उसी समय एक भक्त द्वारका में तप कर रहा था। एक दिन उसको एक आवाज सुनाई दी, क्या चाहिये ? भक्त ने कहा—'भगवान का दर्शन करना चाहता हूं। मुझे भगवान का दर्शन कब होगा ? जवाब मिला—अरे भाई ! भगवान तो भक्त की सेवा में लगे हैं। तुम यहाँ क्यों तप कर रहे हो ? पैठण जाओ, वहां एकनाथ के घर में तुमको भगवान मिलेंगे।' फिर उसने पूछा—किस नाम से भगवान वहां विराजमान हैं ? जवाब मिला—वहां उनको श्रीखंडया कहते हैं। यह सुन कर भक्त तुरन्त पैठण गया। नाथ का घर ढूंढ़ते ढूंढ़ते पहुंच गया। देखा घर में कोई नहीं है लेकिन बाहर एक नौकर पानी भर रहा था। दूर नदी से पानी लाता है और हंडी में डालता है।

भक्त ने पूछा—नाथ का घर कहां है ?

नौकर ने कहा—यही है।

फिर भक्त ने पूछा—यहाँ श्रीखंडया महाराज भी हैं ? वे कहां हैं, मैं उनसे मिल सकता हूं ?

नौकर ने कहा—हां अन्दर जा कर पूछ लीजिये।

वह भोला भक्त अन्दर गया और इधर श्रीखंडया नदी पर पानी लाने गया तो वापस आया ही नहीं। भक्त ने अपनी सारी कहानी एकनाथ महाराज को कही एकनाथ महाराज को जब पता चला कि श्रीखंडया यानी साक्षात भगवान ही मेरी सेवा में थे, तो उनको दुख हुआ उनकी आंखों से प्रेमाश्रु बहने लगे। वे भावावस्था में लीन हो गये। उसी समय भगवान की चतुर्भुज श्याम मूर्ति एकनाथ महाराज के सामने प्रकट हुई। भगवान ने कहा—नाथ। यदि मैं इस रूप में तुम्हारे घर रहता तो तुम मुझे काम करने थोड़े ही देते। मैं भक्ति का भूखा हूं, मुझे भक्त की भक्ति चाहिये। जो भक्त अनन्य भक्ति से मुझको भजता है उसकी हर बात के लिये मैं तैयार हूं। जिसमें भक्त को कोई रकम से कष्ट न हो।

एकनाथ महाराज भगवान से कहते हैं—